ISSN : 2277-7865
Price : ₹ 50

तित्थयर

वर्ष ३८ अंक ०१ अप्रैल २०१४

॥ जैन भवन ॥

श्रीश्री नेमिनाथाय नमः

"ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी"।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late Sikhar Chand Churoria

MANUFACTURED BY

K. K. FOOD PRODUCTS

A quality product of
Nakeen, Chanachur, Bhujia, Gathia etc.

Partners
Mr. Anil Kumar
Mr. Sunil Kumar Churoria

P.O.- Azimganj, Dist. Murshidabad
Pin- 742122, West Bengal
Mobile: 09734067986/9434060429
Phone No: 03483-253232, Fax No.: 03483-253566
E-mail ID : kusumchanachur@hotmail.com
azimganjsunil@gmail.com

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३८ अंक - ०१ अप्रेल २०१४

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com
Website : www.jainbhawan.org

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 006 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा

पी-एच.डी., डी.लिट्

॥ जैन भवन ॥

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Prof. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. Dr. Peter Flugel
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10 Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं. लेख	लेखक	पृ. सं.
१. संस्कृत जैन श्रीकृष्ण-साहित्य एक अवलोकन	डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य	५

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : जैन मुनियों की मूर्तियाँ हाथ में ओघा लिए हुए
बौद्धों में ओघा का प्रचलन नहीं है।
(Fei lai feng caves China)

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

संस्कृत जैन श्रीकृष्ण-साहित्य
(एक अवलोकन)

डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य

भारतीय वाङ्मय में श्रीकृष्ण का स्वरूप विशेष तथा विशिष्ट आलोच्य विषय के तौर पर उभरता रहा है। भारतीय चिन्तन-मनन तथा लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा समृद्ध रही है। प्राचीन वैदिक चेतना से लेकर अधुनातन साहित्य निर्माण में भारतीय साहित्यिक परम्परा सदैव गतिमान रहा है। युगीन परिवर्तनशीलता के चलते पारम्परिक साहित्य सृजन में अनेक मोड़ आए, असंख्य पड़ाव आए। परन्तु साहित्य निर्माण के हर परिवर्तनशील पड़ाव पर कृष्ण का चरित्र, उनका व्यक्तित्व ही एकमात्र ऐसा विषय था, जो अपरिवर्तनीय बना रहा। भारतीय वाङ्मय के स्वरूप में बदलाव आते गए, कथ्यरूप, सर्जनात्मक प्रयोग तथा युगीन परिप्रेक्ष्यों में भारी परिवर्तन देखे गए। काव्यप्रयोग तथा भाषिकी चिन्तन में नवीनतम प्रयोग होते चले गए परन्तु भारतीय सांस्कृतिक तथा सर्जनात्मक सत्ता में कृष्ण-चरित्र की परम्परा पुष्ट और अक्षुण्ण बनी रही।

"The formative aspects of Indian identity, from literature to religion has revolved around the personality of Krishna, the divine Godhead. Depictions and descriptions in multifarious ways, scattered in literary and philosophical texts through the ages, show and pertinently reflect this very fact, that no other figure has affected aesthetically, psychically and creatively, surviving the

blizzard of time, as Krishna did and continues to redefine his iconic centrifugality till this day."[1]

वैदिक वाङ्मय से लेकर संस्कृत साहित्य तथा पिंगल, अपभ्रंश और ब्रज आदि सभी भाषाओं में श्रीकृष्ण सम्बन्धी विपुल साहित्य रचा गया है। भारतीय जनगणचेतना तथा सांस्कृतिक सत्ता में कृष्ण का पौराणिक, मिथकीय भावावयव किस हद तक अभिनिविष्ट रहा है, यह इसी बात का द्योतक है। भारतीय लोक जीवन को श्रीकृष्ण चरित्र ने उसके जीवनचर्या के हर स्तर तक प्रभावित किया है। प्रादेशिक भाषाओं में कृष्ण चरित्र पर आधारित जो विपुल साहित्य-सर्जन हुआ है, वह इस बात का पुष्ट प्रमाण पेश करता है।[2]

जैन श्रीकृष्ण साहित्य अपनी परम्पराओं के आलोक में कई दृष्टियों से विशिष्ट कोटि का माना जा सकता है। भारतीय वाङ्मय की विशद यात्रा के सविशेष सहचर के रूप में जैन साहित्य का स्थान अत्यन्त गरिमामंडित रहा है। इस नाते यह भी उल्लेखनीय है कि जैन साहित्य ने संस्कृत साहित्य को श्रीमंडित तथा समृद्ध करने में विशिष्ट योगदान दिया है। विद्वानों का यह मानना है कि जैन संस्कृत साहित्य की अपनी ही निराली छवि है और उससे संस्कृत वाङ्मय को एक अद्भुत निखार मिला है।[3]

एक सामान्य अवधारणा लोगों में यह रही है कि कृष्ण वैदिक परम्परा के विभूति रहे हैं और वैदिक साहित्य में ही श्रीकृष्ण के स्वरूप को अभिमण्डित किया गया है। पर यह असल में वास्तविकता नहीं है।

---

1. Woolner, David, 'Krishna : A Study in Iconic Creativity', published in Journal of the North Western Oriental Society (JNWOS), vol. XII, Dec. 1971, pp. 81-82
2. द्विवेदी, डॉ. चतुर्भुज प्रसाद, भारतीय साहित्य में अवतारवाद, सरस्वती विद्या मंदिर, अयोध्या, 1968, पृष्ठ 89-90
3. शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 1991, पृष्ठ 2

जैन साहित्य की सुदीर्घ परम्परा को हम सामने रख सकते हैं, जहाँ श्रीकृष्ण के स्वरूप को विशेष महत्त्व और विपुलता के साथ ग्रहण किया गया है।

अगर विषय के दृष्टिकोण से देखा जाए तो जैन तत्त्व के अनुसार श्रीकृष्ण का स्वरूप संस्कृत साहित्य में एक मौलिक दृष्टिकोण का सूत्रपात करता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि जैन साहित्य ने अलग तरीके से श्रीकृष्ण के चरित्र को अपनाया है। वैदिक चेतना द्वारा प्रतिफलित कृष्ण के प्राचीन स्वरूप का जो नियमन व सम्प्रेषण तथा सर्जनात्मक निदर्शन हमें देखने को मिलते हैं, जैन साहित्य में उसकी अनुकृति देखने को नहीं मिलती। विशेषज्ञों के अनुसार—

"The Jaina conceptuality of Krishna is starkly different and cuts a whole new niche from its vedic counterpart. The general conception regarding the Vedic formulation of Krishna is abundant in literaure, but the Jaina identity hints directly towards the iconic differentiation in identities of Krishna, as depicted in Puranas or Vedic tradition. In this way, the Krishna identity is cut out in Jainism according to its own facade."[4]

वासुदेव : जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप

हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि वैदिक परम्परा में श्रीकृष्ण का जो स्वरूप है, जैन साहित्य में उसकी अनुकृति नहीं मिलती। प्राचीन जैन आगम ग्रन्थों में श्रीकृष्ण चरित का जो पारम्परिक

---

4. Aliston, Vanessa, The Blue Godhead : Krishna in different shades, Princeton, 1965, p. 32. अधिक जानकारी के लिए देखें– "Iconic Transformations of Krishna Imagery in Indian culture", research article by Prof. John V. Balaswamy in the Journal of Indological Studies, Dravidian Institute of Indology, Tiruchuzhi, Vol. V, May issue, 1972, pp. 189-215

चित्रण मिलता है, वहाँ कृष्ण का व्यक्तित्व इस आगमिक परम्परा द्वारा प्रभावित है। इसी आधार पर जैन चिन्तन के सम्प्रेषण की विकासप्रक्रिया में कृष्ण का 'जैन स्वरूप' विकसित होता चला गया।

जैन तीर्थंकरों में वर्धमान महावीर ने अपने सैद्धान्तिक प्रचार के लिए कई लोकानुपेक्षी तरीके अपनाए। अपनी आध्यात्मिक मनीषा के आलोक में जैन धर्म का सैद्धान्तिक प्रतिपादन करते समय उनके समर्थन में वे तद्‌युगीन प्रचलित मिथकों व लोकाख्यानों का आश्रय लेते थे। श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंग भी इसी प्रकार महावीर के प्रवचनों में सम्प्रेषित होते गए।[5]

जैन दृष्टिकोण से श्रीकृष्ण का प्रसंग मूलतः साधन की दृष्टि से उपयोग में लाया गया। इनका साध्य तो जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना था। साधन चूँकि स्वरूपतः साध्यानुकूल ही होता है, इसी कारण श्रीकृष्ण का जो चरित्र, जो स्वरूप उभरकर सामने आया वह जैन नीति, सैद्धान्तिक आयाम तथा धर्माचरण प्रचार के अनुकूल था। जैनागम ग्रन्थों का मूल उद्देश्य तीर्थंकर महावीर के उपदेशों को लेखबद्ध करते हुए विशेष क्रमानुसार, सुनियोजित प्रयत्नों के द्वारा जैन चिन्तन तथा आचार संहिता को जन समाज में प्रचारित करना था। जितने भी आगमेतर जैन साहित्य विकसित हुए, उनका विकास आगमों के आदर्शानुरूप ही होता चला गया। अतः आगमिक चिन्तनप्रणाली के अन्तर्गत जब साधन के तौर पर बड़े वैशिष्ट्यपूर्ण स्वरूप में कृष्णचरित्र का निर्माण किया गया, तब श्रीकृष्ण भी अपने 'जैन मतानुसारी स्वरूप' में व्याप्त होते चले गए।[6]

जैन साहित्य में आगमेतर हो या आगमोक्त, दोनों स्थितियों में कृष्णचरित्र के स्वरूप विवेचन में हम कई विशेषताओं को देख पाते हैं।

---

5. शास्त्री, प्रो. जयदेव, भारतीय मनीषा और श्रीकृष्ण, ज्ञान प्रकाशन, लखनऊ, 1967, पृष्ठ 50
6. तिवारी, डॉ. हरिमोहन, कृष्णकाव्य और भारतीय संस्कृति, अभिनव प्रकाशन, कानपुर, 1987, पृष्ठ 48

जैन साहित्य में कृष्ण, उसके वैदिक स्वरूप से विशिष्ट तौर पर भिन्न रहा है। संज्ञात्मक नामकरण की दृष्टि से वैदिक तथा जैन, दोनों संस्कृति में ही समान रूप से कृष्ण को 'वासुदेव' के नाम से सम्बोधित करने की रीति है। परन्तु श्रीकृष्ण के साथ संयुक्त किए गए इस नाम का प्रयोजन दोनों मान्यताओं में भिन्न-भिन्न रहा है। 'वासुदेव' संज्ञा वैदिक मतानुसारी दृष्टि से जितना वंशगत नाम है, जैन दृष्टि से वह नाम उतना ही गुणाभिव्यंजक है। वैदिक परम्परा में वसुदेव का पुत्र 'वासुदेव' कहलाता है। जबकि जैन परम्परा में श्रीकृष्ण को एक गुणात्मक व्यक्ति-वाचक उपाधि के आधार पर 'वासुदेव' सम्बोधित किया जाता है। जैन मान्यता के अनुसार 'वासुदेव' एक गुणात्मक श्रेणी विशेष है। जैन चिन्तन में वासुदेवों की एक परम्परा रही है, जबकि वैदिक धारा में श्रीकृष्ण को ही एकमात्र वासुदेव कहा गया है। जैन चिन्तन के अनुसार वासुदेवों की इस परम्परा में कृष्ण अन्तिम 'वासुदेव' हैं। कुल नौ वासुदेवों में श्रीकृष्ण अन्तिम अर्थात् नवम वासुदेव हैं।

जैन परम्परा में वासुदेव नामक पदाधिकारी एक विशिष्ट वर्ग या श्रेणी विशेष के द्योतक हैं। जैन मान्यता से सम्पृक्त इस विशिष्ट पक्ष में परिवर्तनशील समय के साथ-साथ धर्मचेतना भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त करते हुए एक समय चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है और पुनः अपकर्षोन्मुख हो जाता है। इस उत्कर्ष और अपकर्ष के काल को क्रमशः उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के नाम से अभिहित किया जाता है। ये दोनों मिलाकर एक अखण्ड कालक्रम की रचना करते हैं। जैन परम्परानुसार प्रत्येक उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल में एक-एक तीर्थंकर परम्परा रहती है। इस परम्परा में चौबीस तीर्थंकर होते हैं। इनके अतिरिक्त बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव तथा नौ प्रतिवासुदेव होते हैं। इनके अलावे नौ बलदेव भी होते हैं–जिन्हें मिलाकर कुल तिरसठ (63) महापुरुष प्रत्येक काल में होते हैं।[7]

---

7. विशेष जानकारी के लिए देखें–जायसवाल, डॉ. भगवान प्रसाद, 'प्राचीन भारतीय दर्शन में समाज चिन्तन', पंचम अध्याय, जैन कालखण्ड की अवधारणा, 1977, साहित्य मंदिर प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 92-126.

'वासुदेव' कहते ही जैन परम्परा में एक विशिष्ट वर्ग उभरकर सामने आता है। इस कोटि के व्यक्ति कई आभ्यंतरीण तथा बहिरंग गुणावलियों से सम्पन्न होते हैं। वासुदेव जैन परम्परा के अनुसार महान वीर तथा अपराजेय होते हैं। अमित बलशाली होने के बावजूद वे कभी भी अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करते। वैदिक परम्परा में वासुदेव श्रीकृष्ण स्वयं उपास्य हैं, परम-पुरुष हैं (एते चांसकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वयम्)। परन्तु जैन परम्परा में वासुदेव उपास्य नहीं होते। यहाँ उपास्य केवल तीर्थंकर होते हैं तथा स्वयं वासुदेव भी तीर्थंकरों के उपासक होते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समीक्षित किया जाय तो 'निदानकृत' होने के कारण वासुदेव चौथे गुणस्थान से आगे नहीं बढ़ पाते। इसी कारण तीर्थंकरत्त्व की सर्वोच्च प्राप्तिस्वरूप आध्यात्मिक उपलब्धि उनके लिए सम्भव नहीं होती। जैन परम्परानुसार, प्रत्येक वासुदेव के समय में कोई प्रतिवासुदेव होता है, जिसका तीन खण्डों पर आधिपत्य होता है। जीवन के अन्तिम भाग में वह सत्ता और शक्ति के नशे में मदान्ध होकर उन्मत्त हो जाता है। इस रूप में प्रतिवासुदेव अन्यायी और अत्याचारी बन जाता है। यहाँ भी अवताररूप में न सही, पर 'परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्,' वासुदेव प्रतिवासुदेव के साथ युद्ध करता है और फलस्वरूप प्रतिवासुदेव का विनाश होता है। प्रतिवासुदेव के त्रिखंडव्यापी साम्राज्य का स्वामी वासुदेव हो ज़ाता है।[8]

जैन साहित्य के 'वासुदेव' रूपी श्रीकृष्ण, उपरोक्त प्रकृति के वासुदेव थे। जैन साहित्यिक चिन्तन में श्रीकृष्ण वासुदेव तथा जरासंध प्रतिवासुदेव थे। वासुदेव के नित्य सहायक के रूप में बलदेव सदा उपस्थित रहते हैं।

'वासुदेव' के रूप में श्रीकृष्ण को मान्य समझनेवाली जैन परम्परा उन्हें 'अवतार' नहीं मानती। जैन परम्परा अवतारवाद को

---

8. नित्यबोधानन्द, स्वामी, अवतारवाद और तीर्थंकर परम्परा, 1990, पुरुषोत्तम पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 47-83

स्वीकार नहीं करती। जैन चिन्तन, दर्शन एवं साहित्य में 'मानव' ही सर्वोपरि है। अवतारवाद के विरोध के साथ-साथ, जैन चिन्तन मनुष्य के ही सन्मार्ग अनुसरण तथा उत्तरोत्तर उन्नत होते हुए आत्मिक चरमोत्कर्ष की बात कहता है। वैदिक और जैन परम्परा में प्रधान पार्थक्य ईश्वर तथा मानव को लेकर है। वैदिक परम्परा में ईश्वर मानवदेह धारण (अवतार-स्वरूप) कर अवतीर्ण होता है। निवृत्ति से वह प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होता है। ब्राह्मीस्वरूप के निराकार-निर्विकार अवस्थान से वह साकार सविकारी रूप धारण करता है। प्रख्यात चिन्तक दांडेकर इस बारे में कहते हैं—

" From the infinite realm to the finite, from the eternal to the transient, each and every age confined Godhead or Avatar nonetheless seemed much as a detained officer in a post of demotion, with his own set of virtues and vices, much less a redeemer than a petty subvirtued human being."[9]

इसके बिल्कुल विपरीत जैन अवधारणा सामने उभरकर आती है, जहाँ मानवीय आत्मोत्थान की कथा स्पष्टरूप से प्रतिभासित होती है। यहाँ हम एक ऐसी पुरुषार्थी परम्परा के क्रमोन्नत विकास को देख पाते हैं, जो प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर अग्रसर होता है, भाग्यवाद तथा नियतिवाद को पूर्णतः नकारता है तथा ईश्वर या किसी भी अन्य विधातापुरुष के वर्चस्व को सीधे अस्वीकार करता है।

जहाँ तक श्रीकृष्ण के चरित्र को प्रतिपाद्य विषय बनाकर साहित्य-निर्माण का सवाल है, तो हम देख पाते हैं कि जैन लेखकों ने एक

9. Dandekar, Prof. Haribhau Vilasrao, 'A Treatise of Philosophical Discourses related to Jaina Antiquity and their Historicity', Monograph published from 'Bharatiya Lokayata Sansthan', Bhopal, 1982, p. 56.

सुदीर्घ रचनात्मक परम्परा के अन्तर्गत, श्रीकृष्ण के चरित्र को साहित्य की अनेक विधाओं में प्रस्तुत किया है। इन विधाओं में चरित्र-आधारित महाकाव्य, पौराणिक महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा स्फुट या मुक्तक काव्य आते हैं। इनमें श्रीकृष्ण के साथ बाइसवें (द्वाविंशतितम्) तीर्थंकर अरिष्टनेमि (नेमिनाथ), बलराम, प्रद्युम्न, गजसुकुमाल, जरासंध, कंस, रुक्मिणी और पंच-पाण्डवों का समावेश है। जैन दार्शनिक दृष्टि प्रवृत्तिमुखी, भोगमुखी जीवनधारा को निवृत्तिमुखी, वैराग्यमुखी आत्मिक साधना की धारा में बहाकर, संयम व तपस्या के द्वारा, मोक्ष तथा कैवल्य-प्राप्ति कराती है। श्रीकृष्ण का स्वरूप तथा उनसे जुड़े प्रमुख या गौण पात्र सभी इसी बोध व उपलब्धि से ओतप्रोत हैं।[10]

वासुदेव श्रीकृष्ण : जैन परम्परानुसारी वर्णन में

यद्यपि यह सही है कि प्राचीन जैनागम ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंगों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, पर ये सभी उल्लेख थोड़े बहुत विश्रृंखलित हैं। बात यह है कि श्रीकृष्ण के जीवन से सम्पृक्त ऐसे ही प्रसंगों को प्रतिपाद्य विषय बनाया गया है, जो सहायक के रूप में समाविष्ट किए जा सके। इन कारणों के चलते जैन आगमों में श्रीकृष्ण चरित्र का सही विकास दृष्टिगत नहीं होता।

जहाँ तक आगमेतर ग्रन्थों का सवाल है, वहाँ श्रीकृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओं को जो कदाचित विश्रृंखलित तथा खण्डित हैं- उन सभी को क्रमिक और व्यवस्थित रूप प्रदान किया गया है। आवश्यकता के अनुसार शून्य स्थलों की पूर्ति का स्तुत्य प्रयास भी किया गया है। इन आगमेतर ग्रन्थों में श्रीकृष्ण का चरित्र एवं जैन मतानुसार उनका व्यक्तित्व और अधिक निखरकर आया है। वैदिक परम्परा तथा पौराणिक आख्यानों में जिस कृष्ण की अलौकिक लीला सामान्यतः लोकचेतना में परिव्याप्त है, उसे जैन चिन्तन नहीं स्वीकारता।

---

10. अधिक जानकारी के लिए देखिए–दीक्षित, डॉ. जगदीशदत्त, कृष्णकाव्य के जैन कथानक, शोधदिशा (त्रैमासिक), मार्च, 1984, पृष्ठ 32-39

जैन चिन्तन के अनुसार, श्रीकृष्ण अत्यन्त बलशाली, पराक्रमी, तेजस्वी महामानव थे। जैन परम्परा में श्रीकृष्ण साहित्य के अन्तर्गत एक सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक छवि को उकेरा गया है। इस धारा में श्रीकृष्ण बड़े शक्तिशाली रूप में वर्णित हुए हैं। वे गुणशील सदाचारी, ओजस्वी, वर्चस्वी तथा यशस्वी महापुरुष के रूप में चित्रित हुए हैं। जैन ग्रन्थों में उन्हें अमोघबली, अतिबली, महाबली, अप्रतिहत तथा अपराजेय रूप में चित्रित किया गया है। जैन कथानकों में कहा गया है कि श्रीकृष्ण का शारीरिक बल इतना विपुल था कि वे सुगमता के साथ महारत्न वज्र को भी चुटकी से मसलकर चूर्ण कर देते थे।[11] जैन ग्रन्थों में कई विविध रूपों में श्रीकृष्ण के सर्वगुणाभिव्यंजक आभ्यंतर और बहिरंग रूप का वर्णन मिलता है। जहाँ तक सौन्दर्य का सवाल है, बाह्य तथा आभ्यंतरीण सौन्दर्य मूलतः अन्योन्याश्रित होते हैं। जो सौन्दर्य आन्तरिक स्तर पर दिखाई देता है, वह बाहरी स्वरूप में भी प्रतिफलित होकर व्यक्तित्व को आकर्षक तथा सौन्दर्य सम्पन्न बनाता है। जैन चिन्तन व साहित्य-लेखन में भी इसी मत को समर्थन मिला है। यही कारण है कि जैन परम्परा में पूज्य तथा मान्य सभी विशिष्ट पुरुष आकर्षक व प्रभावशाली होते हैं। प्रज्ञापना सूत्र (23) के अनुसार जैन दृष्टि से जो तिरसठ (63) श्लाघनीय (शलाका) पुरुष हुए हैं, वे सभी उत्तम शरीरिक संस्थान सम्पन्न थे। 'हारिभद्रीयावश्यक' में उनके शरीर की प्रभा को निर्मल स्वर्णरेखा के समान वर्णित किया गया है। इनं तिरसठ शलाकापुरुषों में श्रीकृष्ण नवम वासुदेव हैं।

जैन परम्परा में श्रीकृष्ण का स्वरूप तथा शारीरिक प्रकृति सुजात तथा सर्वांगसुन्दर था। वे लक्षणों और गुणों से युक्त थे। जैन कथानकों के अनुसार उनका शरीर दस धनुष परिमाण दीर्घ था। अत्यन्त कान्तियुक्त, सौम्य तथा सुभगस्वरूप वाले कृष्ण, प्रियदर्शी थे।

---

11. देखिए, प्रश्नव्याकरण, चतुर्थ अध्याय, पृष्ठ 1217 में श्रीकृष्ण का रूप-ओजपूर्ण सौन्दर्य वर्णन।

वे प्रगल्भ, धीर और विनयी थे। सुखशील थे, किन्तु प्रमादी नहीं थे। वे उद्योगी प्रवृत्ति के थे। वाणी उनकी गम्भीर, मधुर थी तथा स्नेहयुक्त भी थी। वे गजेन्द्र गति से चलते थे। मुकुट कौस्तुभ मणि से सुशोभित था। कर्ण में कुण्डल तथा वक्ष पर एकावली सुशोभित रहती थी। धनुर्धारी होने के साथ-साथ शंख, चक्र, गदा, पद्म से भी वे सुशोभित थे। प्रश्नव्याकरण के एक उल्लेख के अनुसार श्रीकृष्ण को शत्रुमर्दनकारी, युद्ध में कीर्तिमान स्थापित करने वाले, अजित और अजितरथ के रूप में कहा गया है।[12]

उपर्युक्त स्वरूप में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व जैन ग्रन्थों में चित्रित दिखाई देता है। जैन परम्परा में श्रीकृष्ण को वीरश्रेष्ठ कहा गया है। वासुदेव परम्परा का प्रत्येक महापुरुष वीरोत्तम तथा अर्धचक्रवर्ती शासक होता है। श्रीकृष्ण का भी यही स्वरूप रहा है। वैताढ्यगिरि (विन्ध्याचल) से समुद्र पर्यन्त समस्त दक्षिण भारत के वे एकछत्र अधिपति थे।

बारवइए नयरीए अद्धभरहस्स य समस्त य आहेवच्चं जाव विहरइ।

– अन्तकृद्दशा सूत्र

पारम्परिक तथ्यों के आधार पर जैनमत में यह प्रचलित है कि दक्षिण भारतार्द्ध के स्वामी श्रीकृष्ण का वर्चस्व उत्तर-भारतीय राजनीति में भी छाया रहा। अपने सशक्त प्रतिद्वन्द्वी जरासन्ध व उसके सहायक कौरवों को परास्त कर उन्होंने पाण्डवों को हस्तिनापुर के राज्यासन पर प्रतिष्ठित करवा दिया था। श्रीकृष्ण जैसे व्यक्तित्व को उनके समयकाल में अखिल भारतीय राजनैतिक महत्ता प्राप्त थी, तत्कालीन समयकाल में जो स्तुत्य है। जैन साहित्य के द्वारा कई लुप्तप्राय ऐतिहासिक तथ्य पुनः उभरकर सामने आए हैं। डॉ. संगवे इस बारे में बताते हैं—

---

12. शास्त्री, राजेन्द्रमुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, 1991, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 24

"The 'Identity' of Krishna was related with many new findings from antiquity regarding Jaina historicity. It was on a basis of relativity that Tirthankara Arishtanemi was the cousin (brother) of Vasudeva Srikrishna. The textual as well as semi-archaeological remains specifically prove the fact."[13]

जैन संस्कृत कृष्णपरक काव्य : प्रतिनिधि रचनाएँ

जहाँ तक प्राचीनता का सवाल है, संस्कृत जैन काव्य के अन्तर्गत चरित काव्य की दृष्टि से रविषेणाचार्य कृत 'पद्मपुराण चरित' विद्वानों के अनुसार सबसे प्राचीन ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है। जिनसेनाचार्य अपने 'हरिवंशपुराण' की भूमिका में यह बतलाते हैं कि पद्मपुराण का विवेच्य विषय 'रामचरित' है। ग्रन्थ की रचना का समयकाल विक्रमी संवत् 840 है।

'नाथूराम प्रेमी ने अपनी रचनाओं' में जैन संस्कृत कृष्ण काव्य की परम्परा में आचार्य जिनसेन के 'हरिवंश-पुराण' को ही आदि ग्रन्थ माना है।[14]

संस्कृत भाषा की सुपुष्ट साहित्यिक परम्परा में मूर्धन्य कवियों ने जिन विधाओं को उजागर करते हुए साहित्य-सर्जना की थी, उसका सकारात्मक व स्थायी प्रभाव जैन रचनाकारों पर भी पड़ा। जैन साहित्यकारों ने भी विभिन्न काव्य विधाओं में कृष्णपरक साहित्य की रचना की।

---

13. देखें, Sangave, Dr. Vilas Adinath, ' The Jaina Society : A Transition in History, 1987 Purva Publishing Agency, Nagpur, p. 68-83.
अधिक जानकारी के लिए देखिए, Sharma, Prof. Upendranarayan (ed.) 'The Facades of Jaina Literary History : A Modern Perspective', 2002, AG Publishing House, p. 281-319.
साथ ही सूत्रात्मक भाष्य व तथ्य के लिए देखें— 'नवमो वासुदेवोयमिति देवा जगुस्तदा' —हरिवंशपुराण 55/60
14. प्रेमी, नाथूराम, जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ 420-28

सामान्यतः चार प्रकार की काव्यगत विधाओं के द्वारा जैन श्रीकृष्ण साहित्य की रचना होती रही है। ये हैं—चरितमूलक महाकाव्य, इतरनाममूलक महाकाव्य, सन्धान काव्य तथा अनेकार्थी पौराणिक महाकाव्य। हम इन सभी विधाओं के अन्तर्गत प्रतिनिधि रचनाओं को क्रमानुसार उपस्थापित करते हैं।

जैन संस्कृत कृष्णकाव्य के अन्तर्गत चरितमूलक महाकाव्य के रूप में एक ही प्रमुख व प्रधान कृति पाई जाती है। दूसरी चरितमूलक कृतियाँ सभी एक ही मौलिक पद्धति को अपनाकर चली है।

(क) प्रद्युम्न चरित (गुणाकर सेन और महासेन)

प्रद्युम्न चरित के लेखक गुणाकर सेन और उनके शिष्य महासेन सूरि थे। गुणाकर सेन के गुरु आचार्य जयसेन मुनि थे जो सिद्धान्तों के ज्ञाता और लाटवागड संघ के आचार्य थे। गुणाकर सेन के पट्टशिष्य आचार्य महासेनसूरि सिन्धुराज मुंज द्वारा सम्मानित किए गए थे। इस काव्य में आने वाले प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि सिन्धुराज मुंज के महामात्य पर्पट ने भी महासेन सूरि की चरणवंदना करते हुए इनका बहुमान किया था और कृति रचना की प्रेरणा प्रदान की थी। **'श्री सिन्धुराजसत्कमहामहत्व श्रीपप्पटगुरोः पण्डितश्रीमहासेनाचार्यस्व कृते'** सूत्र के अनुसार यह बात पुष्ट होती है।[15]

'प्रद्युम्न चरित' का रचनाकाल विद्वानों के अनुसार विक्रमी संवत् 1031 (974 ई.) है। हालांकि विद्वानों का यह मत भी अनुमान ही है। हम जो कुछ ऐतिहासिक सूत्र खोज पाते हैं, उनके अनुसार निम्नलिखित तथ्यों को समेट पाते हैं। प्रो. टी. वासुदेवन इस विषय में तथ्य प्रदान करते हैं कि—

---

15. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए, 'A Treatise on the Socio-Philosophical Aspects of Jain Sanskrit Poetry', by Prof. U.N. Narasimha, Institute of Oriental Research, Bangalore, 1989 तथा संस्कृतमूलक जैन काव्यग्रन्थों के लिए देखिए, ओझा, डॉ. वीरेन्द्र, संस्कृत काव्य में भारतीयता व धार्मिकता, प्रवीण प्रकाशन, आगरा, 1980, पृष्ठ 91-128.

"Historical specimens defining the time period of rulers regarding the factual introspection of 'Pradyumna Sutra' by Gunakar and Mahasena relates us to the following facts.

(a) That the year of ascension on the throne by Munja Raja ousting the Parmar clan was on the year 974 A.D. The two dedicatory inscriptions of Munja reflect the same.

(b) That approximately between the years 993 and 998, Munja was assasinated by Tailappadeva.[16]

डॉ. वासुदेवन द्वारा प्रदत्त तथ्य से जो ऐतिहासिक बिन्दु उभरकर आते हैं, वे हैं-

परमारों की गद्दी पर राजा मुंज विक्रम संवत् 1031 (अर्थात् 974ई.) को आसीन हुए। मुंज के दो दान पत्र ऐसे प्राप्त हुए हैं, जहाँ इसी समयकाल का उल्लेख मिलता है। एक और तथ्य जो सामने आया है वह इस बात का प्रमाण है कि 993 ई. से 998 ई. के मध्यवर्ती समयकाल में तैलप्पदेव ने राजा मुंज का वध किया था।

इस सम्बन्ध में पूर्व मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विशिष्ट विद्वान डॉ. हर्षदत्त अग्निहोत्री लिखते हैं—

"मुंज के बाद शासन का बागडोर उसके अनुज सिंधुल ने सम्हाला था। इन्हें ही 'नव साहसांक सिन्धुराज' के नाम से अभिमण्डित किया गया था। भोज इन्हीं (सिन्धुल) का पुत्र था। मेरुतुंग रचित 'प्रबन्धचिन्तामणि' में इस बात का उल्लेख है। मुंज के दो दानपत्र यथाक्रमानुसार 974 ई. (संवत् 1031) तथा सन् 979 ई. (संवत् 1036) के समयकाल के हैं।[17]

16. Vasudevan, Prof. T.R. 'Pradyumna Sutra' of Mahasena and its Historicity, quoted from 'Selected Papers on Indology', S.M. Publications, 1972, Chennai, pp 78-132 and 186-214

17. अग्निहोत्री, डॉ. हर्षदत्त, जैन पुरातत्त्व के आलोक में भारतीय समाज, मध्यभारत पुरा-ग्रन्थमाला, ग्रन्थ-6, दर्पण पब्लिकेशन्स, इन्दौर, 1962, पृष्ठ 103-104.

हम इससे यह अनुमान लगा सकते हैं कि 'प्रद्युम्न चरित' की रचना का समयकाल 974 ई. के आसपास है। महासेन सूरि का समय दसवीं शती का उत्तरार्ध है। संवत् 1973 में प्रकाशित इस रचना की कई हस्तलिखित प्रतियाँ जयपुर के कई ग्रन्थ भण्डारों में सुरक्षित हैं।

प्रद्युम्न चरित की कथावस्तु

प्रद्युम्न चरित की कथावस्तु के अन्तर्गत **प्रथम सर्ग** में यह दिखलाया गया है कि द्वारावती नगरी के अन्तर्गत पराक्रमी वासुदेव श्रीकृष्ण का शासन था। सत्यभामा श्रीकृष्ण की सुन्दरी पट्टमहिषी थी। श्रीकृष्ण पृथुवंशोत्पन्न थे, और स्वयं अत्यन्त रूपवान थे। वीरता, व्यक्तित्व तथा सौन्दर्यराशि के धारक-संवाहक होने के कारण परम शत्रुगण भी उनके सामने नतमस्तक हो जाते थे।

द्वितीय सर्ग के अन्तर्गत कवि दिखाते हैं कि नारद द्वारिका पधारते हैं और सत्यभामा द्वारा उनकी उपेक्षा की जाती है। सत्यभामा के निज-रूप सौन्दर्य के अहंकार को चूर्ण करने के लिए अपमानित नारद ने कृष्ण के कहीं और विवाह की योजना बनाई। कुण्डिनपुर के नरेश भीष्म के पास पहुँचकर नारद ने भीष्म की कन्या राजकुमारी रुक्मिणी की सेवा ग्रहण की। रुक्मिणी की अथक-आन्तरिक सेवा के चलते नारद रुक्मिणी को श्रीकृष्ण प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं। नारद द्वारा प्रदत्त चित्रफलक देखकर रुक्मिणी के प्रति श्रीकृष्ण की अनुरक्ति जाग उठती है। वे मन ही मन उसे प्राप्त करने का संकल्प कर लेते ह। रुक्मिणी भी कृष्ण को हृदय से अपना चुकी थी। भीष्मपुत्र रुक्मिकुमार अपनी बहन का विवाह चेदिराज शिशुपाल से करना चाहते थे। रुक्मिकुमार शिशुपाल को विवाहार्थ निमंत्रण भेजते हैं। तथ्य की सूचना प्रदान कर नारद श्रीकृष्ण को रुक्मिणी हरण का प्रस्ताव देते हैं।

तृतीय सर्ग *के अन्तर्गत रुक्मिणी द्वारा कामदेव के अर्चनार्थ* उद्यान में आने का वर्णन है। इसी समय श्रीकृष्ण भी कुण्डिनपुर पहुँचे।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर लेते हैं और रुक्मि तथा शिशुपाल द्वारा पीछा किए जाने पर वे शिशुपाल का वध कर देते हैं। द्वारका ले जाकर वे रुक्मिणी का पाणिग्रहण करते हैं। इस सर्ग में श्रीकृष्ण द्वारा उपवन में रुक्मिणी को श्वेतवस्त्रावृता देवी के रूप में सजाते हुए सत्यभामा और रुक्मिणी के बीच मेल व गहरी मित्रता करवाने का मनोहर वर्णन है।

चौथे सर्ग में घटनापरम्परा अधिक घनीभूत होती है। रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों इस बात पर वचनबद्ध होते हैं कि इनमें से जो भी पहले पुत्रवती होगी, वह अपने पुत्र— विवाह के अवसर पर दूसरी का सिर मुण्डित करवा देगी। संयोगवश रुक्मिणी की प्रथम पुत्र प्राप्ति होती है। परन्तु जन्म के पंचम दिन ही धूमकेतु नामक असुर द्वारा बच्चे का अपहरण हो जाता है। वातरक्षक गिरि पर अरक्षित स्थिति में शिशु को देखकर वात्सल्य से द्रवित होकर विद्याधर राजा कालसंवर उसे अपना लेता है। कालसंवर इस बात की घोषणा करवा देता है कि उसकी रानी कनकमाला ने पुत्र को जन्म दिया है। राजकुमार का नाम प्रद्युम्न रखा जाता है।

पंचम सर्ग में पुत्र के अपहरण से दुःखी रुक्मिणी के विलाप को दर्शाया गया है। द्वारका में तहलका मच जाता है। विशेष खोज के बाद भी शिशु कहीं नहीं मिलता। सीमन्धर स्वामी से विदेह में प्रश्न पूछने पर नारद जान पाते हैं कि पूर्वभव की वैरिता के चलते बालक का अपहरण कर लिया गया है। कालसंवर के राजपरिवार में वह बालक प्रद्युम्न के नाम से बड़ा हो रहा है। सोलह वर्ष बाद वह माता-पिता के पास लौट आएगा। सीमन्धर स्वामी प्रद्युम्न के पूर्वभव की बात कहते हैं जो सप्तम सर्ग में दी गई है।

षष्ठ सर्ग में अयोध्या के राजा अरिंजय का शासन दिखाया गया है। मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर राजा विरक्त हो जाते हैं तथा

पुत्र को राज्यपद सौंप देते हैं। इधर दो वणिकपुत्र होते हैं, जो श्रावक धर्म स्वीकारने के साथ-साथ, प्रेरक कथाएं सुनकर दीक्षित होने के उपरान्त स्वर्गलाभ करते हैं।

सप्तम सर्ग में राजा हेमनाभ का प्रसंग है, जो कोशलनगरी के नृपति हैं। हेमनाभ के दो पुत्र हैं मधु और कैटभ। राजा और रानी दोनों सन्यास ग्रहण करते हैं और मधु को राजा और कैटभ को युवराज घोषित करते हैं। मधु कैटभ दोनों अपार शक्तिशाली तथा पराक्रमी होते हैं। भीम द्वारा कोशलराज्य में उत्पात तथा अत्याचार के चलते मधु भीम पर आक्रमण करता है। मार्ग में राजा हेमरथ द्वारा समर्थन व स्वागत किए जाने पर भी मधु उनकी रानी पर आसक्त हो जाता है। भीम का वध करते समय मधु हेमरथ की पत्नी को भी अपने साथ ले आता है। राजा हेमरथ देवयोनि प्राप्त करते हैं। स्वर्ग से च्युत होकर ही मधु का जीव प्रद्युम्न रूप में जन्म लेता है। उधर विक्षुब्ध, पीड़ित हेमरथ ही धूमकेतु के रूप में जन्मलाभ करता है। इधर कैटभ का जीव जाम्बवती के पुत्र के रूप में जन्म लेता है। पूर्वभव (पूर्वजन्म) के इसी बैर के चलते धूमकेतु प्रद्युम्न का अपहरण करता है। सीमन्धरस्वामी से नारद इन सारीं बातों से अवगत होते हैं।

अष्टम सर्ग में प्रद्युम्न की कथा कही गई है। बालक प्रद्युम्न कालसंवर के राजपरिवार में दिनोंदिन रूप, सौन्दर्य और वीरता में निखरता जाता है। उनके सामर्थ्य एवं वीरता के आधार पर वह अनेक शत्रुओं को पराभूत करता है। कालसंवर अपनी पत्नी के प्रति वचनबद्धता के चलते प्रद्युम्न को ही युवराज घोषित करते हैं। इस घटना स कालसंवर के पुत्रगण ईर्ष्या के चलते प्रद्युम्न को नाग व राक्षसों का निवासस्थान विलयार्द्ध कन्दरा में ले जाते हैं। परन्तु अपने विशेष पराक्रम के चलते प्रद्युम्न उन्हें अपने वशीभूत कर लेता है।

रानी कंचनमाला प्रद्युम्न के रूप पर आसक्त हो जाती है तथा

प्रणय प्रस्ताव करती है। प्रद्युम्न हतप्रभ होने के बावजूद बुद्धि से काम लेता है। वह सारी विद्याएँ ग्रहण कर लेता है और आत्मरक्षण का उपाय बताता है। कंचनमाला प्रद्युम्न को वश में न कर पाने के आक्रोश से प्रद्युम्न पर बलात्कार का आरोप लगाती है। कालसंवर अपने पुत्रगण सहित प्रद्युम्न के साथ युद्ध करने के लिए निकल पड़ते हैं। परन्तु उस समय तक प्रद्युम्न के लिए, वहाँ रहने की अवधि पूर्ण हो जाती है। प्रद्युम्न द्वारका के लिए प्रस्थान करते हैं। प्रद्युम्न को दंडित करने के लिए राजा सेना भेजता है, परन्तु विद्याबल से वह प्रद्युम्न की कथा का विवेचन करते हुए कंचनमाला के षड्यंत्र को समझ जाता है। कालसंवर वस्तुस्थिति की सच्चाई को जानकर प्रद्युम्न पर संतुष्ट होता है।

नवम सर्ग में नारद के साथ प्रद्युम्न द्वारका पहुँचकर वहाँ विवाहोत्सव संघटित होते देखता है। सत्यभामा-तनय भानु का पाणिग्रहण दुर्योधन तनया उदधि के साथ सम्पन्न हो रहा था। पूर्व निर्धारित वचनबद्धतानुसार रुक्मिणी केश-मुण्डन करना चाहती थी। पति और पुत्र के जीवित रहते हुए भी यह विवशता उसे बड़ी पीड़ा पहुँचाती रही। अपनी माता को इस संकट से उबारने के लिए प्रद्युम्न वनचारी के छद्मवेष में उदधि का अपहरण करने लगता है। नारद के सामने उदधि के विलाप करते समय प्रद्युम्न अपना वास्तविक रूप प्रकट करता है। सत्यभामा का पुत्र भानु युद्ध में सम्पूर्ण पराजित होता है। मर्कट के भेस में प्रद्युम्न नगर व उपवन को नष्ट कर देता है। अत्यन्त कुरूप व मलिन वेष में प्रद्युम्न अपनी माँ रुक्मिणी के पास जाता है। रुक्मिणी श्रीकृष्ण के लिए बनाये गए पकवान प्रद्युम्न को खिलाती है। अपने विद्याबल से वह माता को बाल-क्रीड़ाओं के दृश्य दिखाता है। प्रद्युम्न फिर यादव सेना तथा दुर्योधन की सेना को चुनौती देता है।

दशम सर्ग में युद्धकालीन प्रद्युम्न का वाण-कौशल देखकर श्रीकृष्ण विशेष प्रभावित होते हैं। इसके बाद बाहु-युद्ध का प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है और श्रीकृष्ण तथा प्रद्युम्न आमने-सामने होते

हैं। पिता-पुत्र एक दूसरे को युयुधान-स्थिति में देखकर वहाँ नारद बीच में आकर कौशलपूर्वक प्रद्युम्न का परिचय दे देते हैं। श्रीकृष्ण विशेष प्रसन्न होते हैं। अत्यन्त आडम्बर और शान शौकत के साथ प्रद्युम्न नगर में प्रवेश करता है। प्रद्युम्न के साथ उदधि का विवाह सम्पन्न होता है जहाँ कालसंवर और कनकलता भी विवाहोत्सव में सम्मिलित होते हैं।

एकादश सर्ग के अन्तर्गत श्रीकृष्ण द्वारा जाम्बवती-पुत्र शाम्ब को (शीलभंग के अपराध में) निर्वासित करना दिखाया गया है। इधर प्रद्युम्न की भेंट शाम्ब से होती है। प्रद्युम्न शाम्ब का विवाह सम्पन्न करवाता है। प्रद्युम्न को भी अनिरुद्ध नामक पुत्र की प्राप्ति होती है।

द्वादश सर्ग में तीर्थंकर नेमिनाथ का पल्लव देश से विहार कर सौराष्ट्र में आगमन होता है। समवशरण के दौरान यादव जाकर तीर्थंकर की चरण वंदना करते हैं। उन्होंने बलदेव के प्रश्न का जवाब देते हुए कहा कि मदिरा और अग्नि के कारण द्वारिका नष्ट हो जाएगी। साथ ही जरत्कुमार के बाण से श्रीकृष्ण का निधन होगा। यह सुनकर आत्मग्लानि से भरकर जरत्कुमार वन में चला जाता है और जीवन बिताने लगता है। इस प्रकार की भविष्यवाणी से यादव चिन्तित हो उठते हैं।

त्रयोदश सर्ग के अन्तर्गत यह दिखाया गया है कि राजसभा में श्रीकृष्ण की उपस्थितिकालीन प्रद्युम्न वहाँ उपस्थित होकर तीर्थंकर नेमिनाथ के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त करता है। माता-पिता से अनुमति पाकर वह दीक्षाग्रहण कर लेता है। सत्यभामा और रुक्मिणी भी इसी समय दीक्षित हो जाते हैं।

चतुर्दश सर्ग में प्रद्युम्न के घोर तपस्या का वर्णन है। गुणस्थान आरोहण तथा कर्मप्रकृति-क्षय के उपरान्त प्रद्युम्न केवलज्ञान प्राप्त कर जाते हैं। शाम्ब, अनिरुद्ध तथा काम सभी मुनिधर्म स्वीकार कर लेते हैं। अन्ततः प्रद्युम्न अपने अन्तिम साधनात्मक चरण में निर्वाणलाभ कर लेते हैं।

यही चतुर्दश सर्गों में 'प्रद्युम्न चरित' की कथा है।

'प्रद्युम्न चरित' के आधार ग्रन्थ तथा स्रोत : तथ्य-विवेचन

दो प्रमुख जैन पौराणिक ग्रन्थ 'प्रद्युम्न चरित' के कथानक का आधार हैं। इनमें से पहली है जिनसेनाचार्य (प्रथम) कृत हरिवंशपुराण एवं दूसरी है गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराण।[18] डॉ. राजेन्द्र मुनिजी आलोच्य कथानक का सम्बन्ध हरिवंशपुराण के 47 सर्ग (20वें पद्य से) एवं 48वें सर्ग (39वें पद्य तक) से मानते हैं। वैसे ही उत्तरपुराण के 72वें पर्व में यह विवेचित है।

प्रद्युम्न चरित का महाकाव्यत्व : एक दृष्टिपात

महाकाव्यत्व की कसौटी पर प्रद्युम्न चरित खरा उतरता है। अनेक सर्गों में विभक्त होना तथा इसकी संख्या का चौदह (14) होना, कुछ प्राथमिक लक्षण हैं। छन्द प्रयोग की विशेषता पर डॉ. सहाय लिखते हैं–

'प्रद्युम्न चरितम् के छन्द सर्गबद्ध हैं और सर्गान्त सूचक भी हैं। सर्ग के अन्तिम चरण में कवि द्वारा शब्द-चयन की प्रौढ़ता के चलते छन्दों में परिवर्तन भी परिलक्षित होते हैं–जो स्वाभाविक व स्वच्छन्द हैं'।[19]

डॉ. चतुर्वेदी प्रद्युम्नचरितम् के महाकाव्यत्व पर अपनी बात रखते हुए कहते हैं–

---

18. इस विषय पर विशेष अध्ययन के लिए देखिए, Chaturvedi, Gyan and Jonathon Engelstrom, An Enlightened Bliss : Solitude, Psyche and Creation in Jaina Epics, APG Publishers, Chennai, 1982, p. 63-89, तथा शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 45-47.
    दोनों आधारग्रन्थों के लिए देखें–
    क) हरिवंशपुराण (1962), भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
    ख) उत्तरपुराण (1954), भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
19. सहाय, डॉ. रघुवरशरण, जैन काव्य के पौराणिक स्रोत : एक विवेचन, प्रगति प्रकाशन, 1972, पृष्ठ 75

"The base of the contextual format regarding the poetic epic of 'Pradyumna Charita' is related with a famous Puranic episode. The Shanta Rasa is the 'Anga Rasa' along with the systematic and aesthetic assimilation of Karuna, Veer and Shringar Rasa which are portrayed as the Angibhuta Rasas. We also find an effective description of valour along with ingenuity and linguistic skill in the poetic stanzas. The poetic lines have been abundant with myriad natural verdures consisting of ocean, cities, mountains, dusk, dawn, seasons, journeys and likewise."[20]

प्रद्युम्न ही इस महाकाव्य के नायक हैं। जैन परम्परानुसारी शास्त्रानुसार वे काम के ही एक रूप हैं। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि जिस प्रकार तीर्थंकर एक स्तर है, वासुदेव एक पद है, उसी प्रकार चौबीस तीर्थंकरों के समयकाल में अनुपम आकृति के धारक व वाहक बाहुबली आदि चौबीस प्रमुख कामदेव जैन चिन्तन में माने गये हैं, जिनमें प्रद्युम्न का उल्लेख किया गया है। कामदेव के इस पद पर प्रत्येक तीर्थंकर के काल में किसी पुण्यात्मा का अधिष्ठान था। नेमिनाथ के समयकाल में प्रद्युम्न कामदेव पद के अधिकारी थे।[21]

---

20. देखें, Chaturvedi, Gyan, 'The Sanskrit Epics : An Insight through Jaina Purview, APJ Publishing House, 1991, p.p. 128-149.

21. Svdanyk, Prof. Jerry, 'The Tirthankara Lineage : The Structural Formation of Jaina Tradition, paper presented at the school of Oriental Conference, Dacca, Bangladesh, 1968, साथ ही जैन कामदेवों के सम्बन्ध में यह श्लोक प्रचलित है कि–

 'कालेसु जिणवराणां चउवीसानं हवंति चउवीसा।
 ते बाहुबलिप्पमुहा कंदप्पाणिसमाणाय।।'

प्रद्युम्नचरितम् में प्रतिनायक नहीं है। श्रीकृष्ण तथा कालसंवर दोनों से प्रद्युम्न का संघर्ष होता है, परन्तु इनमें से कोई भी खलनायक या प्रतिनायक नहीं है। सामान्यतः खलनायक नायक द्वारा अर्जित लक्ष्य या फलप्राप्ति की मार्ग में हर पल विरोध उपस्थित करता है। वह पाठक की सहानुभूति को भी खो देता है। परन्तु काव्य में न तो श्रीकृष्ण और न ही कालसंवर इस स्थिति के अन्तर्भुक्त किए जा सकते हैं।

कथानक महाकाव्योपयुक्त बना है, परन्तु कथाक्रम का शास्त्रीय विकास परिलक्षित नहीं होता। जैन चिन्तन में जीवन के लक्ष्य को मोक्षप्राप्ति के रूप में माना गया है। परन्तु प्रद्युम्न के मोक्ष प्राप्त करने के बावजूद हम इस काव्य में पारम्परिक जैन चिन्तन के अनुसार मोक्ष को एक निर्धारित लक्ष्य के रूप में नहीं पाते। इसका कथानक मुख्य रूप से जीवन-चरित को ही मुख्य आख्यान मानता है। जीवन की घटनाओं को चित्रित करने में कवि का ध्यान अधिक रमा है।

देश-काल-वस्तु-व्यापार : वर्णन पद्धति

प्रद्युम्न चरित में देश काल परिस्थिति आदि के विषय में कवि ने विशेष दक्षता प्रदर्शित की है। कवि ने सौराष्ट्र अंचल का बहुपक्षीय, सजीव चित्र उभारकर अपनी कलात्मक सौन्दर्य से उन्हें खींचा है। चाहे नदी-सरोवर हो, या वन उपवन, जीव जन्तुओं का वर्णन हो या उदार प्राकृतिक सौन्दर्य का, हर विषय का यथास्थान वर्णन किया गया है। प्रद्युम्न चरित का कथ्यात्मक स्वरूप विशेष रोचक तथा सरस है।

सौराष्ट्रदेश के विषय में कवि लिखते हैं—

'सहस्रसंख्यैः सितरक्तनीलै : सरांसि यस्मिंज्जलजैर्विरेजुः।
कुतुहलेमेव मदीयलक्ष्मी द्रष्टुं समेतैः सुरराजनेत्रैः।।'[22]

---

22. देखें–प्रेमी, नाथूराम (सम्पा.), प्रद्युम्नचरित, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, मुम्बई.

कवि कहते हैं– "जिस सौराष्ट्र देश के सरोवरों में श्वेत रक्त और नीलवर्ण के सहस्त्रों कमल विकसित व सुशोभित हो रहे थे– उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता था मानो इन्द्र के सहस्र नेत्र कौतूहल के कारण इस देश की लक्ष्मी को देखने के लिए प्रस्तुत हो गए हों।"

अपने भवनों की छत पर बैठकर रमणियाँ गीत गाती थीं और उनके मनोहर गीत सुनकर चन्द्रमा की गोद में रहने वाला हिरण मधुर गीत से आकृष्ट होकर वहाँ चला आता था।

प्रद्युम्नचरित का चरित्र-चित्रण

इस कथाकाव्य का नायक प्रद्युम्न राजवंश में उत्पन्न कुलीन तथा गुणी पुरुष है। प्रद्युम्न में धीरोदात्त नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में वह कभी अधीर नहीं होता, साहस नहीं खोता। कहीं वह फूँकारते हुए सर्प से लड़ जाता है और उसे पराभूत कर देता है।[23] कहीं कपि का रूप धारण करने वाले आम्रवृक्षवासी धनद से भी वह निर्भयतापूर्वक लड़ लेता है।[24] कपित्थवन में भयंकर कपिरुपधारी असुर से बाहु युद्ध करना हो[25] या वराहगिरि में वराह के साथ वीरतापूर्वक युद्ध करना हों[26] हर स्थान पर साहस और जीवट में प्रद्युम्न ही सर्वोपरि रहा।

वह संयमी है। कंचनमाला के विवाह-प्रस्ताव को नकारने में उसका यह अद्वितीय शील व संयमी चरित्र ही सम्प्रेषित होता है। द्वारका विनाश की बातें उसके मन में विराग-भावना को जगाता है। इसी के फलस्वरूप वह दीक्षित होकर अन्त में परम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

'प्रद्युम्नचरितम्' के अन्तर्गत और भी कई पुरुष पात्र हैं, जिनमें श्रीकृष्ण, बलराम, नारद तथा कालसंवर उल्लेखनीय हैं। कालसंवर उदात्त और दयालु है, जो पर्वतशिखर पर असहाय शिशु को देखकर

---

23. प्रद्युम्न चरित, 8/15-18
24. वही, 8/59-62
25. वही, 8/64-68
26. वही, 8/71-82

आश्रय देता है। पुत्रवत् पालन करते हुए वह कंचनमाला को यह आश्वासन देता है कि उसके शिशु को ही युवराज बनाया जाएगा।

नारी पात्रों में रुक्मिणी और सत्यभामा आते हैं जहाँ सपत्नी डाह विशेष रूप से उभरा है। उधर रुक्मिणी सुशीला, सद्गुण सम्पन्ना और विवेकयुक्ता है। कवि ने शिशु प्रद्युम्न के अपहृत होने पर बड़े कारुणिक रूप में रुक्मिणी को विलाप करते हुए दिखाया है। पुत्र के पुनर्मिलित पर शैशव के वात्सल्य का वर्णन बड़े चाव से करती है जो उसके मातृत्व का द्योतक है।

काव्यांग-विवेचन: रस, छन्द तथा अलंकार योजना

कवि महासेन ने आलोच्य काव्य में विभिन्न रसों की सृष्टि की है। अलंकार-प्रयोग की दृष्टि से इस काव्य में कई प्रकार के अलंकारों को भाषिकी सौष्ठव के साथ जोड़कर देखा गया है। रसों के अन्तर्गत श्रृंगार, करुण, वीभत्स, रौद्र तथा शान्त रस का परिपाक हुआ है। इस काव्यकृति में संगीतात्मक तत्त्व की अधिकता है। इसीलिए अनुप्रासों की संख्या इस काव्य में अधिक हैं। अन्य अनेक अलंकारों का प्रयोग इस काव्य में देखा जा सकता है जिनमें यमक, पुनरुक्ति, वीप्सा, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रान्तिमान, संदेह, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, असंगति, व्यतिरेक, अर्थान्तरन्यास, परिसंख्या आदि का उपयोग देखा जा सकता है। प्रसंगानुरूप छन्द प्रयोग भी व्यवस्थित ढंग से हुआ है। छन्दों का वैविध्य भी 'प्रद्युम्नचरित' की अन्यतम विशेषता है। उपजाति, शार्दूल विक्रीड़ित, वसन्ततिलका, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, द्रुतविलंबित, पृथ्वी, अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, ललिता, तिलका, शालिनी आदि कई प्रसिद्ध तथा अल्पज्ञात छन्दों का प्रयोग यहाँ कवि ने किया है।

रस वर्णन के अन्तर्गत श्रृंगाररस का सविशेष प्रयोग किया गया है। उदाहरणस्वरूप—

"नर्ममर्मपरिबालनागिरः सत्यया सह विधाय केशवः।
स्वाञ्चलस्थांकितवक्त्रपंकजः स्वापकेलिमालम्ब्य तस्थिवान।।"[27]

---

27. प्रद्युम्न चरित, 3/45

आलम्बनरूपी रुक्मिणी और आश्रयरूपी श्रीकृष्ण का शृंगारोचित वर्णन द्रष्टव्य है। रुक्मिणी के साथ व्यतीत संयोग शृंगार के सुखद रूपों को (संयोगी वर्णनों को) कृष्ण शृंगारोचित सपत्नीक ईर्ष्या के रूप में सत्यभामा को व्यक्त करते हैं। इस पद में कृष्णरति के स्थायी भाव की उत्पत्तिं होती है।

कई ऐसे उपादानों का शृंगारिक विवेचन किया गया है जो पारम्परिक तथा शास्त्रीय आकलन में संताप वृद्धिकारक हुआ करती थी। विरहज्वाला से संतप्त उसे किसी प्रकार से शान्ति प्राप्त नहीं हो रही थी।

आलोच्य प्रसंग में हेमरथ की पत्नी आलम्बन है। उद्दीपन वसन्त ऋतु है, अनुभाव मधु की शारीरिक चेष्टाएँ हैं तथा हर्ष-चिन्ता और औत्सुक्य संचारी भाव हैं।[28] इनके साथ शान्त व वीररसात्मक पदों का भी सुन्दर निर्माण कवि ने किया है।

अलंकार योजना में 'प्रद्युम्नचरित' का विशिष्ट योगदान रहा है। जैसे विरोधाभास अलंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"मातंग संसक्तोऽपि भुञ्जानो मेदिनीमपि।
स्त्रीमनोनेत्रचौरोऽपि स तथापि सतां यतः।।"

मातंग चाण्डाल के सान्निध्य में रहने के बावजूद सज्जनों द्वारा मान्य है। यहाँ विरोधाभास के द्वारा यह दिखलाया गया है कि नीच, दुराचारी चण्डाल के साथ रहकर (कोई भी) सज्जनों द्वारा मान्य नहीं हो सकता। चण्डाल हाथियों के सहित होने पर भी सज्जनों द्वारा मान्य था। विरोधाभास यहाँ भी देखा जा सकता है।

---

28. प्रद्युम्न चरित के अन्तर्गत वर्णित रस तथा अलंकार विवेचन के लिए देखें– "On the Diversification of Rasa and Alamkara in Jaina Epics" by Dr. Aravind Kulshreshtha, research article included in 'Indian Epics and Traditionality : Perspectives and Phases' ed. by Prof. Shashi Jayraman and Prof. Nikhil Kelkar, Oriental Research Journal, Kolhapur, 1972, p.p. 197-239 इसके अलावे देखें– शास्त्री, डॉ. राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण-चरित, पृष्ठ 50-52

यमक, उपमा, भ्रान्तिमान आदि अलंकारों का भी यथोपयुक्त प्रयोग किया गया है।

भाषा-शैली प्रयोग

कवि महासेन ने अपनी भाषा प्रयोग के द्वारा काव्य शैली के अन्तर्गत वैदर्भी रीति द्वारा काव्य-रचना की है। संस्कृत कवियों में महासेन अपनी मधुर वाणी तथा प्रसाद गुण द्वारा सरस काव्य-निर्माण के लिए जाने जाते रहे हैं। प्रद्युम्न चरित में भी सरलता, प्रसादगुण, तथा सहज-भाषिकी शैली और पद-लालित्य के दर्शन हो जाते हैं। कई स्थानों पर सूक्तियों का प्रयोग अत्यन्त प्रभावशाली हो उठा है।

सूक्ति प्रयोग के अन्तर्गत कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'प्राकृतो हि विनयो महात्मनाम्।
शाको हि नाम परमानवतामुपैति।।'

'प्रद्युम्नचरित' सौन्दर्य और श्रृंगार का काव्य है। डॉ. कुलश्रेष्ठ इस विषय में कहते हैं—

"It seems that the variance in poetic beauty which is abundant in 'Pradyumnacharita' owes its indepth creativity to epic Sanskrit works like 'Saundarananda' 'Buddhacharita', 'Raghuvamsa' 'Meghadoota' and 'Kumarsambhava'."[29]

पदलालित्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'न दीनजाता नवलस्वभावा न निम्नगावा न कलंकितापि।
जलाशया नैव च सत्यभामा भार्याभवन्तस्य प्रराजितश्रीः।।'

समाधि टूटने पर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के शारीरिक व मानसिक सौन्दर्य का अवलोकन करते हैं, ऐसा कवि ने लिखा है—

---

29. Kulshreshtha, Dr. Aravind, 'On the Diversification of Rasa and Alamkara in Jaina Epics' p.p. 209 (Indian Epics and Traditionality: Perspectives and Phases)

**'निधुन्तुदः केशकलापमर्मणा मुखेन्दुमादातुमिवाप संनिधिम्।
अजायतास्याः सुपयोधरोन्नतिः समुन्मनीकर्तुमनंगकेकितम्।।'**[30]

कवि कहते हैं—'शीतल वायु के चलने पर संसार काँप रहा है और बादलों से मुसलाधार वृष्टि हो रही है। कृषक लोग काँपते हुए समस्त हलोपकरणों को छोड़कर गृहाभिमुखी हो चुके हैं।'

काव्यात्मक गुणों का समन्वय भी प्रद्युम्नचरित के काव्य सौष्ठव का अन्यतम अंग है। प्रसाद, माधुर्य तथा ओज इन तीन काव्यिक गुणों का समन्वय इस काव्य में देखा जा सकता है। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

प्रसादगुण

**'मित्रं समोहारि यशो विभूषा।
नियतितो जलधौ पतिते रवौ।।'**

माधुर्यगुण

**'तन्वी स्वयं मुरजिता करपंकजाभ्यां ओत्थापिता मलयजादि रसेन सिक्ता।
पूर्ण नभो विदधती करुणस्वनेन मूर्छां विहाय हरिणा सहसा रुरोदा ।।**[31]**'**

ओजगुण

'रेणुर्घण्टासैन्ययोर्वारणानां चक्रुः शब्दं काहलं काहलश्च।[32]
भेरीभम्भास्तूर्यभेदांश्च येऽन्ये चेरुर्विश्वे व्याप्तदिक्काः समन्तात्।।[33]**'**

छन्द योजना

छन्द योजना में भी कवि महासेन ने कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। छन्द योजना के विषय में डॉ. हरवंशलाल तिवारी लिखते हैं—

"जैन काव्यों में छन्दों की निर्माणपरकता में सर्गबद्धता एवं अभिव्यंजना विशेष तौर पर देखने को मिलती हैं। नाद-सौन्दर्य एवं

---

30. देखें, शास्त्री, डॉ. राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ 52
31. प्रद्युम्नचरित, 5/16
32. वही, 1/21
33. वही, 4/28

व्यंजनधर्मी ताल सृजन में जैन काव्य बेजोड़ है। गति, यति और लय, तीनों का समाहार यहाँ एकत्रित रूप में देखने को मिलता है। प्रद्युम्नचरित जैसे जैन काव्य जो सहज ही महाकाव्य की कोटि में गिने जा सकते हैं–उनकी यह अन्यतम प्रमुख विशेषता रही है।[34]"

काव्य वर्णनशैली

जहाँ तक वर्णनशैली की बात है, महासेन ने इस काव्य में विभिन्न ऋतुओं, समयकालों आदि का बेजोड़ वर्णन किया है। वसन्त वर्णन के एक चतुष्पदिकामूलक श्लोक में प्रथम दो श्लोकों में वसन्त के प्रभाव का विवेचन है तो दूसरे में वसन्त ऋतु के रात्रिकाल का वर्णन है–

'सर्वतो मुकुलयन् सहकारान् पुष्पयन्नन्तु वनं वरराजीम्।
अन्तरेऽत्र समवाप वसन्तः क्षारसेवनमिव क्षतमध्ये।।'[35]

'यामिनी प्रियतमापवृशत्वं खण्डितेव शशिनाः दयितेन।
वायवो मलयजा ववुरस्य तापशान्तिकृतये कृपयेव।।'[36]

इस तरह से 'प्रद्युम्नचरित काव्य' अपने आप में समस्त महाकाव्योचित काव्यगुणों द्वारा सुसज्जित एक असाधारण काव्य है।

---

34. तिवारी, डॉ. हरवंशलाल, संस्कृत महाकाव्यों में छंद-विमर्श, राजदीप प्रकाशन, लखनऊ, 1968, पृष्ठ 24
35. प्रद्युम्नचरित, 7/37
36. वही, 7/38

(ख) नेमिनिर्वाणकाव्यम् (वाग्भट प्रथम)

कृति और कृतिकार : एक आलोकपात

'नेमिनिर्वाणकाव्यम्' नामक जैन महाकाव्य की आलोच्य प्रति सन् 1936 ई. में प्रकाशित है, जिसके सम्पादक हैं पंडित शिवदत्त शर्मा और पंडित काशीनाथ शर्मा।[37] पन्द्रह सर्गों में विभाजित यह महाकाव्य बाइसवें जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि का जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। जैन महाकाव्यों में यह कृति जहाँ अपने काव्यिक चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध है, वहीं अपने मार्मिक प्रसंगों के चलते पाठकचित्त को विशेष प्रभावित करती है।

'नेमिनिर्वाणकाव्यम्' के प्रणेता कवि वाग्भट प्रथम हैं। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि वाग्भट नाम से एकाधिक कवि हुए हैं, जो भिन्न-भिन्न कृतियों के रचयिता रहे हैं। जैन सिद्धान्त भवन, आरा के पुस्तकालय में 'नेमिनिर्वाणकाव्यम्' की एक प्रति प्राप्त हुई है जिसका लेखनकाल 1727 विक्रम संवत् है। कवि प्रथम वाग्भट के विषय पर आलोकपात करते हुए डॉ. चन्द्रशेखर रेड्डी लिखते हैं—

"We find a number of poets named 'Vagbhata' in the Jaina tradition. Historically as the poetic lineage goes, poet Vagbhata I or the first of the Vagbhata poets, was born in the 'Pragvata' heredity (also known as Porwada) situated in Ahichhatrapura. His father was named as Chhahad. He was a devout follower of Jainism especially the Digambara canon and traditional lineage. Since as a proof of being related to the Digambara Canon of Jainism, he has paid obeisance to Tirthankara Mallinath, as a 'Kumara' (precisely as a male gender) which defines his Digambara stance."[38]

---

37. प्रकाशक, निर्णयसार प्रेस, मुम्बई
38. Reddy, Dr. Chandrashekhar, 'Poetic Historicity in Indian Literature : A Legacy of Authentication', Lecture given at the Annual Oriental Conference of Mysore, 1977, pp. 28-29

डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अहिच्छत्रपुर को नागोर या नागपुर ठहराया है।

जैन सिद्धान्त भवन, आरा में प्राप्त 'नेमिनिर्वाणकाव्यम्' की हस्तलिखित प्रति में एक प्रशस्ति श्लोक मिलता है। श्लोक है–

'अहिच्छत्रपुरोत्पन्न प्राग्वाट्कुलशालिनः।
छाहडस्य सुतश्चके के प्रबन्धं वाग्भटः कविः।।'[39]

डॉ. रेड्डी ने जो तथ्य ऊपर प्रदान किए हैं—इस श्लोक के सारे वाक्य उसी तरफ निर्देशित करते हैं। नेमिनिर्वाणकाव्य की जो प्रति (हस्तलिखित) आरा में प्राप्त हुई वैसी ही एक और प्रति श्रवणबेलगोला स्व. पंडित दौर्बलि जिनदास शास्त्री वाले पुस्तकालय में सुरक्षित है। यही प्रति उपरोक्त सारे तथ्य प्रदान करती है।

नेमिनिर्माणकाव्य के रचनाकाल को लेकर हमें वैसे कोई अन्तःसाक्ष्य नहीं मिलते। कवि वाग्भट द्वितीय (वाग्भटालंकार रचयिता) ने अपने लक्षण ग्रन्थ में प्रस्तुत काव्य के कुछ अंशों को ग्रहण किया है। इनसे दो बातें संकेतित होती हैं। प्रथम यह कि 'वाग्भटालंकार' रचयिता वाग्भट पूर्ववर्ती हैं। साथ ही 'नेमिनिर्वाणकाव्य' की प्राचीनता को भी यह प्रमाणित करती है। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने इन्हीं आधारभूत तथ्यों के आकलन के द्वारा अनुमान किया है कि 'नेमिनिर्वाणकाव्य' की रचना वि. सं.1171 से पूर्व की है।[40]

मूल कथानकः नेमिनिर्वाणकाव्य

प्रथम सर्ग : आरम्भ में कवि चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करते हुए मूलकथा का आरम्भ करते हैं। यदुवंशी राजाओं में श्रेष्ठ, राजा समुद्रविजय सौराष्ट्र के अन्तर्गत द्वारावती नगरी में शासन करते

39. इस बारे मे देखें–जैन हितैषी पत्रिका, भाग 12, अंक 7-8, पृष्ठ 482
40. शास्त्री, डॉ. नेमिचन्द्र, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ 282

हैं। प्रजाहित और सुव्यवस्थित शासन चलाने के लिए समुद्रविजय अपने अनुज वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण को युवराज नियुक्त करते हैं। स्वयं निःसन्तान होने के कारण, राजा कई तरह के पूजन व्रतादि करते हैं तथा चिन्तामग्न रहते हैं।

द्वितीय व तृतीय सर्ग : आकाश से समुद्रविजय देवांगनाओं का अवतरण देखते हैं। देवांगनाओं से उन्हें सूचना मिलती है कि शिवरानी के गर्भ में तीर्थंकर की आत्मा जन्म ग्रहण करने वाली है। शिवारानी सोलह उज्ज्वल स्वप्न देखती है। पति से पूछने पर उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति का आश्वासन मिलता है।

चतुर्थ सर्ग : जैसे जैसे पवित्र आत्मा गर्भस्थ होकर माता को गर्भवती बनाती है, वैसे ही महारानी के शरीर पर सौन्दर्य, ओप, आभा आदि का विकास होता जाता है। श्रावण शुक्ला षष्ठी की पुण्यतिथि पर पुत्र का जन्म होता है। चतुर्दिशाओं से देवगण द्वारावती पहुँचते हैं।

पंचम सर्ग : इंद्राणी द्वारा एक मायावी पुत्र को लेकर प्रसूति गृह में आते दिखाया गया है। शिवारानी के पास इसे लिटाकर वह बालक को अपने साथ ले जाती है। इंद्र सुमेरु पर्वत पर बालक को ले जाकर पाण्डुशिला पर तीर्थंकर का अभिषेक करते हैं। बालक का नाम इंद्र द्वारा 'अरिष्टनेमि' रखा जाता है।

षष्ठ सर्ग : जन्मना ही अरिष्टनेमि त्रिरत्नस्वरूप 'त्रिज्ञानधारक' (तीन रत्न स्वरूप, तीन ज्ञान के धारक वाहक) थे। ये थे–सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र। धीरे-धीरे समयकाल के व्यतीत होने पर अरिष्टनेमि युवा हो गए। रैवतक पर्वत पर यादवगण वसन्तोत्सव मनाने जाते हैं। अरिष्टनेमि को भी इस मौके का आनन्द उठाने के लिए सारथी प्रेरित करता है।

सप्तम सर्ग : इस सर्ग में रैवतक पर्वत की प्राकृतिक शोभा का वर्णन हैं। नेमिनाथ इस प्राकृतिक शोभा से बड़े प्रभावित होते हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य से मुग्ध होकर वे वृक्षों की सघन छाया से आच्छादित पट-मन्दिर में निवास करने लगते हैं।

अष्टम सर्ग : माधव भी क्रीड़ा करने रैवतक पर्वत पर पहुँचते हैं। यादवगण अपनी संगिनी युवतियों के साथ भाँति-भाँति की जलकेलि में प्रवृत्त होते हैं।

नवम सर्ग : सूर्यास्त के उपरांत चाँदनी की प्राकृतिक सुषमा से प्रेमी-प्रेमिकाओं का मन भाव-विभोर हो उठता है। यादव युवक-युवतियां प्रणय क्रीड़ा में लिप्त होकर सम्भोग-सुख में पूर्ण निमग्न हो जाते हैं।

दशम सर्ग : मधुमत्त युगल मधुपान (मद्यपान) करते हुए विलास केलि में प्रवृत्त होते हैं। इस सर्ग में संभोग श्रृंगार की विविध कलात्मक प्रक्रियाओं के वर्णन के साथ, विविध प्रणय क्रीड़ाओं का विशद व कलात्मक विवरण दिया गया है।

एकादश सर्ग : ऐसे ही मदोन्मत्त परिवेश में उग्रसेन की कन्या राजीमती रैवतक पर्वत पर पहुँचती है। युवक अरिष्टनेमि को देखकर वह मुग्ध होकर विशेष तौर पर आकर्षित होती है। उसके उतावलेपन की स्थिति को शान्त करने की भरसक कोशिश उसकी सखियाँ करती हैं। किन्तु अरिष्टनेमि के स्मरण मात्र से राजीमती की आँखें डबाडबा आती है। संयोगवश, राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण को महाराज उग्रसेन के पास अरिष्टनेमि के लिए राजीमती की याचना के साथ भेजते हैं। उग्रसेन अपनी सहमति प्रदान कर देते हैं। दोनों राजपरिवारों में विवाहोत्सव की तैयारियाँ होने लगती हैं।

द्वादश सर्ग : वरयात्रा सजते समय रथारुढ़ अरिष्टनेमि राजमार्ग पर क्रमशः आगे बढ़ रहे थे। विविध अलंकारों से सारा मार्ग सुसज्जित था। वधु के वेश में सजी राजीमती वर के स्वागतार्थ स्वयं आकर द्वार पर खड़ी होती है।

त्रयोदश सर्ग : अरिष्टनेमि रथ से उतरने के लिए प्रस्तुत होते हैं। इतने में अनेक पशु-पक्षियों का रुदन सुनकर वे ठिठक जाते हैं। सारथी से उन्हें ज्ञात होता है कि विवाह के अवसर पर सामिष व्यंजनों के पकवान बनाने हेतु अनेक पशु-पक्षियों को सामने बाड़े में बन्द करके रखा गया है। यह सुनकर नेमिकुमार को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आता है। तत्क्षण उनमें तीव्र वैराग्य का उदय होता है और संयमित होकर वे तोरण से ही लौट जाते हैं। अपने पूर्वजन्म के पूर्ण वृत्तान्त वे इसी समय सभी को कह सुनाते हैं।

चतुर्दश सर्ग : मुनि अरिष्टनेमि तीव्र वैराग्यप्रवण होकर कठिन तपस्या में प्रवृत्त होते हैं। कायोत्सर्ग-पूर्वक तपश्चरण के द्वारा वे सभी कर्मबंधनों को नष्ट कर अन्ततः केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

पन्द्रहवां सर्ग : केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर देवगण भाव विभोर होकर देव भगवान की स्तुति करते हैं। विशाल मैदान में समवसरण का आयोजन किया जाता है। धर्म उपदेशार्थ भगवान (तीर्थंकर) विभिन्न देशों में विहार करते रहते हैं। अन्ततः कर्मबंधन से मुक्त होकर वे सदा के लिए कैवल्य प्राप्त कर लेते हैं।

नेमिनिर्वाण काव्य : कथानक के आधार ग्रन्थ

नेमिनिर्वाण काव्यकार आचार्य वाग्भट प्रथम अपनी कृति के निर्माण का आधारगत श्रेय आचार्य जिनसेन (प्रथम) कृत 'हरिवंश पुराण' को देते हैं। नेमिनिर्वाण काव्य का अधिकांश कथानक हरिवंशपुराण के कथ्यविषय पर ही आधारित है। डॉ. हीरालाल शुक्ला अपने शोध में दोनों कथानकों के अन्तर्गत अरिष्टनेमि की जन्म तिथि सम्बन्धी पार्थक्य को निर्धारित करते हैं। उनके अनुसार–

"अरिष्टनेमि जैसे केन्द्रीय चरित्र के उपाख्यानपरक जीवन के साथ-साथ उसकी जन्मतिथि में पार्थक्य इन ग्रन्थों की विशेषता है। 'नेमिनिर्वाणकाव्य' में अरिष्टनेमि की जन्म तिथि श्रावण शुक्ला षष्ठी दी गई है। हरिवंशपुराण का श्लोक इस तिथि को वैशाख की त्रयोदशी

में मानता है (शुद्धवैशाखत्रयोदशतिथौ)। हालांकि 'उत्तरपुराण' में श्रावणी षष्ठी (श्रावणेसिते षष्ठ्यां) का उल्लेख हम देख पाते हैं।"[41]

'हरिवंश पुराण' और 'उत्तरपुराण' के अलावे कवि वाग्भट ने 'तिलोयपण्णत्ति' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) जैसे आर्ष शास्त्रीय ग्रन्थ का आभार प्रकट किया है। रैवतक पर्वत पर अरिष्टनेमि और राजीमती का मिलन प्रसंग, दोनों में पारस्परिक आकर्षण आदि सभी विषय कदाचित तिलोयपण्णति के कथ्यवस्तु के समान ठहरते हैं। हालांकि प्रबन्ध काव्य की कोटि में जब हम 'नेमिनिर्वाण काव्य' के कथानक को कसते हैं, तो यह कदाचित शिथिल प्रतीत होता है। कवि के द्वारा बाह्य प्रकृति तथा कुछ एक आयोजनों का ही वर्णन है। अरिष्टनेमि के जीवन के कई मार्मिक प्रसंगों को ही कवि ने अपने विषय के रूप में चुना है। इन निर्वाचित अंशों को ही कवि ने विस्तार दिया है। इधर अरिष्टनेमि के समग्र जीवन पर सम्यकरुपेण आलोकपात नहीं किया गया है।

नेमिनिर्वाणकाव्य का महाकाव्यत्व

कवि वाग्भट प्रथम रचित नेमिनिर्वाणकाव्य के स्वरूपगत संरचना के अन्तर्गत महाकाव्य सम्बन्धी लक्षण अन्तर्निहित हैं। इस विषय पर विद्वानों का मत हैं–

"The poetic essence of 'Neminirvana Kavyam' reflects multifarious portrayals of religious facades, mythological and personified beliefs all being taken into account by the poet. The poet describes the night, the rivers, seas, islands in an elaborate and illustrious manner."[42]

---

41. शुक्ला, डॉ. हीरालाल, जैन साहित्य में प्रतिबिम्बित इतिहास-बोध व ऐतिहासिकता आलोक प्रकाशन, कानपुर, 1986, पृष्ठ 128-129

42. Chaturvedi, Dr. Nikhil and Paul Geitner, 'On the Metasynthesis of Episteme and Poetic Analysis in Neminirvana Kavyam', article published in 'Journal of Oriental Studies' part VI, 1989, p. 362

'नेमिनाथकाव्य' का नामकरण नायक द्वारा फल प्राप्ति के आधार पर किया गया है। द्वारावती नगरी के वैभव तथा सौन्दर्य का कवि ने अत्यन्त मनोहर चित्रण किया है। उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, स्रग्धरा, अनुष्टुप् आदि छन्दों का बहुल उपयोग काव्य में पाया गया है।

वर्णन-चमत्कार के दृष्टिकोण से कवि द्वारा वस्तु-चित्रण देखें-

विराजमानामृषभाभिरामैर्ग्रामैर्गरीयो गुणसंनिवेशाम।
सरस्वतीसंनिधिमाजमुर्वीं ये सर्वतो घोषवतीं वहन्ति।।43

कवि द्वैतमूलक प्रकरण (Dichotomic poetic enhancement) के द्वारा बताते हैं– 'सुराष्ट्र देश बैलों द्वारा सुन्दर, ग्रामों से शोभायमान, गुरुतर, गुणात्मक सन्निवेशों की एक संकलित रचना जैसी है। (यह देश) पंक्तिबद्ध गृहों से युक्त, सरस्वती जैसी नदियों के सामीप्य को प्राप्त तथा गोपवसतिकाओं से युक्त पृथ्वी को सभी ओर से धारण करते हैं।'

श्लोकमूलक दृष्टिकोण के आधार पर इसी पद्य का एक अप्रत्यक्ष अर्थ भी है। इसके अन्तर्गत कवि ने सांगीतिक सिद्धान्तों का निरूपण किया है एवं सुराष्ट्रवासियों में संगीत रसिकता व सांगीतिक प्रेम की ओर इंगित किया है।

द्वारावती नगरी का कवि वाग्भट द्वारा वर्णन द्रष्टव्य है—

'एवंविधा तां निजराजधानी, निर्मापयामीति कुतूहलेन।
छायाछलादच्छजले पयोधौ, प्रचेतसाया लिखितेव रेजे।।'[44]

'स्वच्छ जल से युक्त समुद्र में द्वारावती नगरी का जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा था उससे ऐसा प्रतीत होता था कि जलदेवता वरुण ने कहा हो– मैं भी अपनी राजधानी को इसके समान सुन्दर बनाऊँगा— और इस कौतूहल से मानों एक चित्र खींचा हो।'

---

43. नेमिनिर्वाणकाव्यम्, 1/33
44. नेमिनिर्वाणकाव्यम्, 1/38

इस काव्य में प्रकृति वर्णन को एक नवीन चेतना से जोड़कर देखा गया है। काव्य सौष्ठव को बढ़ाने में प्रकृति वर्णन का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। 'नेमिनिर्वाणकाव्य' का काव्य-सौष्ठव भी अत्यन्त प्रभावी है चूँकि प्रकृति वर्णन में मानवीय भावों को अनुप्रविष्ट करवाते हुए उसमें नए प्राणों को संचारित किया गया है।

कुमुदिनी की सहानुभूति का वर्णन है जहाँ मानवीय भावों का असामान्य संचरण द्रष्टव्य है–

'करुणस्वरं विलपतोरनेकशः पुरतो निशाविरहिणोर्विहंगयोः।
विपदं विलोकयितुमक्षमा ध्रुवं नलिनी सरोजनयनं न्यमीलयत्।।'

अर्थात् रात में विहार करने वाले और सूर्य के वियोग से विलापरत पक्षियों की करुण विपत्ति (क्रन्दन-रूदन) को देखने में असमर्थ कुमुदिनी ने अपने कमल सदृश नेत्र निमीलित कर दिए। कुमुदिनी में जिस मानवीय चिन्तन तथा भावनाओं का संचरण दिखलाया गया है, वह अत्यन्त ही मोहक है।

रस-अभिव्यंजना

इस काव्यग्रन्थ में शान्त रस अंगी है, तथा शृंगार, वीर व करुण रसों को अंग रूप में रखा गया है। शृंगार का एक उदाहरण देखें—

नलिनीदलानि न न हारयष्टय-
स्तुहिनांशवो न न जलार्द्रमंशुकम्।
त्वदृते तदंगपरितापशान्तये,
विपदोऽथवा स्वजनसंगभैषजाः।।[45]

दुर्वह नितम्ब वाली नायिका, विनयान्वित होने पर भी, नायक निकटस्थ है, यह जानकर भी अपने आसन को त्याग न सकी। शयन कक्ष में पति के आने पर उसके मुख से अनायास ही दूसरी नायिका का नाम सुन लेने पर शरीर-दहन (के कारण) कमलिनियों से निर्मित

45. 9/49

शय्या को नायिका छोड़ देती है। प्रियसंग न होने पर, उसके हृदय पर दृढ़तापूर्वक अपने मुख कमल को रख देती है तथा पहले सोची हुई बात को कह डालने के कारण, सखियों द्वारा कहे जाने पर नव वधू ने कृत्रिम क्रोध प्रकट किया। उदाहरण देखें—

'दृढ़मासजेरुरसि वक्त्रमर्पयर्भणितं च पूर्वगुणितं प्रकाशयेः।
प्रियसंगमेष्विति सखीभिरीरिता कृतकं प्रकोपमकरोन्नवा वधूः।।'[46]

ठीक ऐसे ही इस काव्य में शान्त रस की योजना विशेष तौर पर की गई है। सांसारिक प्रपंच से निर्वेद प्राप्ति के विषय में कवि की उद्गार है-

दानं तपो वा विषवृक्षमूलं श्रद्धानतो ये न विवर्ध्य दूरम्।
स्वनन्ति मूढ़ाः स्वयमेव हिंसा-कुशीलतास्वीकरणेन सय्यः।।[47]

कवि कहते हैं– 'जो दान और तपरूपी धर्मवृक्ष पर श्रद्धा न करते हुए दूर तक उनका वर्धन नहीं करते, वे मूढ़ हैं। हिंसा-कुशीलता आदि का सेवन करते हुए वे धर्मवृक्ष का मूलोच्छेद तक कर डालते हैं। द्रव्य या भाव हिंसाकारी व्यक्ति दुर्गतिग्रस्त होता है। इसीलिए विवेकी को जागृत होकर धर्मसेवन करते रहना चाहिए। यही उसके लिए उपादेय होगा।'

आलंकारिकता

'नेमिनिर्वाणकाव्य' में अलंकारों का विशेष समावेश देखा गया है। यहाँ यमक अलंकार का एक असाधारण प्रयोग देखें–

'भूरिप्रभानिर्जितपुष्पदन्तः करायतिन्यक्कृतपुष्पदन्तः।
त्रिकालसेवागतपुष्पदन्तः श्रेयांसि नो यच्छतु पुष्पदन्तः।।'[48]

अर्थात् जिनके दाँतों ने अपनी विशाल प्रभा से पुष्पों को जीत लिया है, जिनके हाथों की लम्बाई ने पुष्पदन्त (दिग्गज) के शुण्ड रूपी

---

46. नेमिनिर्वाणकाव्यम्, 9/54
47. वही, 13/11
48. वही, 1/9

दण्ड को तिरस्कृत कर दिया है और जिनकी सेवा में पुष्पदन्त सूर्य, चन्द्रमा त्रिकाल उपस्थित होते हैं, वहीं तीर्थंकर भगवान पुष्पदन्त हम सबका कल्याण करें।

श्लेष का प्रयोग यहाँ 'श्लेषालंकार'[49] के रूप में देखा गया है। श्लेषालंकार का एक अनवद्य श्लोक यहाँ द्रष्टव्य है—

'सुवर्णवर्णद्युतिरस्तु भूत्यै श्रेयान्विभुर्वो विनताप्रसूतः।
उच्चैस्तरां यः सुगति ददानो विष्णो सदानन्दयतिस्म चेतः।।[50]'

'जिनके शरीर की कान्ति, सुवर्ण समान उज्ज्वल थी, जो भक्त पुरुषों को स्वर्ग, अपवर्ग आदि उत्तम गति प्रदान करने वाले थे, जो स्वसमानकालिक नारायण के चित्त को सर्वदा प्रसन्न किया करते थे और हितोपदेश, प्रदान कर आनन्दित किया करते थे, वे विनता माता के पुत्र श्रेयांसनाथ, तुम सबको विभूति प्रदान करें।'

इस श्लोक का दूसरा अर्थ है—

'जिसकी शारीरिक आभा सुवर्णसमान पीतवर्ण है, जो विभु तथा श्रेय कल्याणरूप है, वह (जिसने) ऊँचे आकाश में सुन्दर गति प्रदान की है तथा जो श्रीकृष्ण के चित्त को हमेशा आनन्दित करते है, (वही) विनता-पुत्र 'वैनतेय-गरुड़' (तुम सभी को) विभूति प्रदान करें।'

भाषा-शैली

'नेमिनिर्वाणकाव्य' की भाषा शैली अत्यन्त समृद्ध है। काव्य प्रसादगुण सम्पन्न है और यही कारण है कि भाव व भाषा की आलंकारिकता के बावजूद यह काव्य सहज-सरल तथा बोधगम्य व रसात्मक है।

---

49. दो से अधिक अर्थ जिस श्लोक में श्लिष्ट-निबन्ध रहते हैं, उस श्लोक में श्लेषालंकार का चमत्कार दिखाई पड़ता है। अधिक उदाहरण व जानकारी के लिए देखें—अलंकार दीपिका, डॉ. प्रभुदत्त शर्मा सम्पादित, पं. वंशीधर शास्त्री संशोधित, तुलाराम मनसुखदास प्रेस, गंगानगर, 1938, पृष्ठ 328-332.
50. नेमिनिर्वाणकाव्यम्, 1/11

(ग) नरनारायणानन्द महाकाव्यम् : (वस्तुपाल)

जब हम संस्कृत साहित्य के ऐतिहासिक व शैलीगत वैशिष्ट्य की ओर देखते हैं तो एक पूरी परम्परा हमें 'आनन्द' नामान्त काव्यों की देखने को मिलती हैं। इस पर डॉ. हरिनारायण दीक्षित का मत है-

"The literary trend in Sanskrit poetry relects a typicality of poetic genre both effecting etymologically and epistemologically. Patanjali points to one such emphatic creativity denoted as the 'Mahananda Kavya' which triggered an efficient tradition of poetic verdure hitherto reflecting poetic genres preferably named with attaching the suffix 'Ananda".[51]

'आनन्द' नामान्त काव्यों और नाटकों की परम्परा में आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र द्वारा विरचित 'कौमुदी-मित्रानन्द' नाटक का नाम लिया जा सकता है।[52] नरनारायणानन्द महाकाव्य, वस्तुपाल द्वारा रचित एक ऐसी काव्यकृति है, जो आनन्द नामान्त काव्यात्मक परम्परा में एक नई दिशा व धारा प्रदान करती है।

अमरचन्द्रसूरि ने 'पद्मानन्द' महाकाव्य की रचना की है।[53] चौदहवीं शती में रचित भारतनंद नामक नाटक के रचयिता नेपाली कवि मणिक थे। हम अप्पय दीक्षित की रचना 'कुवलयानन्द' को देख पाते हैं, जिसकी रचना सत्रहवीं सदी में हुई थी। सत्रहवीं सदी में हम

---

50. Dixit, Dr. H.N., 'Sanskrit Poetry : Trends in Literary Philosophy', 'Vraj Publishers', 1990, p. 284. अधिक जानकारी के लिए देखिए, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1960, पृष्ठ 645.

51. देखें, नाट्यदर्पणम्, ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 1951, पृष्ठ 51

52. जैन, आनन्द प्रकाश, आचार्य हेमचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अभिनव प्रकाशन, पृष्ठ 27

53. पद्मानन्द, एच. आर. कापडिया (सं.) ओरियंटल इंस्ट्रीट्यूट, बड़ौदा, 1962.

'आनन्द' नामान्त कई रचनाओं को देख पाते हैं। 'आनन्द' नामान्त काव्यों में भी कवियों का यही लक्ष्य रहा है कि काव्य के द्वारा मित्रता, आनन्दोल्लास तथा सुखद भाव ही प्रतिपादित किया जाए।

नरनारायणानन्द महाकाव्य : रचयिता और रचनाकाल :

नरनारायणानन्द काव्य के रचयिता महामात्य वस्तुपाल हैं। अनेक व्यावहारिक तथा सूक्ष्म गुणों से गुणान्वित कवि वस्तुपाल, गुजरात तथा मालवा का राजा एवं एक कुशल प्रशासक था। साथ ही वह एक महाकवि भी था। राजा वीरधवल और उसके पुत्र राजा बीसलदेव का वह महामात्य भी था। वे स्वयं कवि थे और उन्हें अच्छे कवियों की परख थी। इस बात का पुख्ता प्रमाण गिरनार के शिलालेख में देखने को मिलता है।[54] कवि सोमेश्वर ने आबू-मन्दिर प्रशस्ति में वस्तुपाल को सर्वश्रेष्ठ कवि कहकर अभिहित किया है।[55] आचार्य राजशेखर सूरि ने उन्हें 'सरस्वती-कण्ठाभरण' नाम से सम्मानपूर्वक अभिव्यंजित किया है।[56] कवि होने से उसके आश्रय में कवियों का एक विद्यामण्डल था, जिसमें राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाक पण्डित, मदन सुभट, अरिसिंह और मंत्री यशोवीर थे। इन सबके साथ वस्तुपाल के सम्पर्क में अनेक जैन कवि और पण्डित आए थे। उनमें अगरचन्द्र सूरि, विजयसेन सूरि, उदयप्रभसूरि, नरचन्द्र सूरि, नरेन्द्रप्रभ सूरि, बालचन्द्र सूरि आदि हैं।[57]

---

54. विशेष जानकारी के लिए देखिए, Paliwal, Prof. Priyavrat, 'Jaina Inscriptions and Paleographs' : A Review, Institute of Oriental Archaology, Madras (Chennai) साथ ही देखें— सांडेसरा, डॉ. भोगीलाल, महामात्य वस्तुपाल का साहित्य-मण्डल और संस्कृत साहित्य में उसकी देन, जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, वाराणसी, 1960, पृष्ठ 55.
55. देखिए, Ranawat, Dr. Uday, Inscriptions of Middle and Middle West India' Paper presented in the 43rd Annual Oriental Conference, 1939, Bhopal.
56. देखिए, प्रबन्धकोश के अन्तर्गत, वस्तुपाल नामक प्रबन्ध (मुनि जिनविजय सम्पादित) तथा उद्धृति— सरस्वतीकण्ठाभरण-लघु भोजराज-महाकवि महामात्य-श्रीवस्तुपालन, प्रबन्धचिन्तामणि, सिंधी जैन विद्यापीठ, 1933, पृष्ठ 100.
57. शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण-चरित, पृष्ठ 64.

वस्तुपाल की कई कीर्तियाँ रही हैं। इन्होंने अणहिलवाड़, स्तम्भ तीर्थ और भृगुकच्छ में पुस्तक भण्डारों की स्थापना की। हरिहर, सोमेश्वर आदि कवियों ने वस्तुपाल को 'वसन्तपाल' उपनाम प्रदान किए। अणहिलवाड़ के एक शिक्षित परिवार में वस्तुपाल का जन्म हुआ था। इस सम्बन्ध में प्रख्यात इतिहासकार कीर्ति चौधरी लिखते हैं—

"Vastupala was a ripening fruit of intellect, which took birth in the family of Asaraj and Kumaradevi. Acharya Vijaysena Suri was the Guru of Vastupala. When he ascended the post of minister, he administered the mans tours to pilgrimages at Shatrunjaya (Palitana) and Girnar, on the years of 1221, 1234-35-36 and 1237 A.D. He went for the pilgrimage at Shatrunjaya, which was his last journey[58] as his journey remained unfinished due to his on-route obituary."

उपरोक्त तथा हमें यह प्रमाण देता है कि वस्तुपाल तीर्थयात्रा के समयकाल में दिवंगत हुए और यात्रा उस बार अधुरी रही।

प्रो. अग्रवाल के अनुसार 'महामात्य' वस्तुपाल ने सन् 1232 ई. में गिरनार में जैन मंदिरों का निर्माण कराया। उसके द्वारा निर्मित अन्यतम प्रसिद्ध मन्दिर आबू में स्थित है। यह मंदिर दिलवाड़ा के मन्दिरों के बीच में हैं। इस मंदिर का निर्माण वस्तुपाल ने अपने अग्रज लुणिग की स्मृति में बनाया था।[59]

58. Chowdhury, Dr. Kirtibhushan, 'Vastupala : Poetic Tradition Redefined', selections from "Indological Essays in Felicitation of Kirti Chowdhury" Karunamay Publishers, 1988, Kolkata, p. 158.

59. देखिए, अग्रवाल, डॉ. संजय, आबू की जैन स्थापत्यकला : सर्वेक्षण और समीक्षा, नवोदय पब्लिकेशन्स, भोपाल, पृष्ठ 129.

नरनारायणानन्द महाकाव्य की रचना का समयकाल सन् 1221 माना जाता है। डॉ. चौधरी के अनुसार– "Since we find no mention of the celebrated temples of Abu and Girnar, in the 16th folio or Sarga of 'Naranarayananand Epic' hence, one can denote that this poetry was written around 1230-31 A.D. Notable fact is that Mahamatya Vastupala died in the year 1249 A.D."[60]

वस्तुपाल का निधन 1249 ई. में हुआ जो तदनुसार विक्रम संवत् 1296, (माघ कृष्णा 5 की तिथि) प्रमाणित होती है।

अस्तु, वस्तुपाल का समयकाल 13वीं सदी है। 'नरनारायणानन्द महाकाव्य' के अलावे वस्तुपाल ने आदिनाथ स्तोत्र, अम्बिकास्तोत्र, आराधना-गाथा आदि कृतियों की रचना है।[61]

नरनारायणानन्द महाकाव्य : कथानक परिचय

प्रथम सर्ग के अन्तर्गत कवि समुद्र तट स्थित द्वारका नगरी की वैभव तथा शोभा का अनुपम वर्णन करते हैं। द्वारका के चित्ताकर्षक व रमणीय भवन, सुशोभित राजमार्ग, तथा जनसंकुल हाटों का मनोहर वर्णन किया गया है।

द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण को राजसभा में विराजमान बताया गया है। दूत से उन्हें सन्देश प्राप्त होता है कि रैवतक पर्वत पर स्थित प्रभास तीर्थ पर अर्जुन का आगमन हुआ है। इस संवाद को प्राप्त कर आनन्दित व सोत्साहित होकर अर्जुन का स्वागत करने तथा भेंट करने कृष्ण उस ओर प्रस्थान करते हैं।

---

60. Chowdhury, Dr. Kirtibhushan, 'Vastupala : Poetic Tradition Redefined' p. 163

61. अधिक जानकारी के लिए देखिए, जैनस्तोत्र समुच्चय, सम्पादक–आचार्य चतुरविजयमुनि, प्रकाशक, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, पृष्ठ - 143

तृतीय सर्ग में अर्जुन एवं कृष्ण का मिलन प्रसंग है। कृष्णार्जुन में कुशल क्षेम विनिमय होता है।

चतुर्थ सर्ग में ऋतुओं का वर्णन है। षड्ऋतुएँ वहाँ सेवार्थ उपस्थित होती हैं। हर तरफ प्रसन्नता, उल्लास और आनन्द का परिवेश छा जाता है।

पंचम सर्ग में प्रकृति वर्णन की प्रधानता है। कवि के द्वारा सूर्यास्त वर्णन के साथ, सांध्य-सुषमा का भी प्रभावी वर्णन कवि ने किया है। तदनन्तर चन्द्रमा की स्निग्ध चाँदनी की छटा का चित्रण है।

षष्ठ सर्ग में द्वारावती के नगरवासियों का जीवन वर्णित है। नव-दम्पति के संयोग-शृंगार का इस सर्ग में वर्णन है। रात्रिकालीन दाम्पत्य शृंगार का वर्णन है।

सप्तम सर्ग में सूर्योदय का वर्णन किया गया है। कमल का मधुर विकास होता है और रातभर उसमें बँधे भ्रमर उड़ने लगते हैं।

अष्टम सर्ग में बलराम द्वारा रैवतक पर्वत पर पहुँचना दिखाया गया है। सपरिवार और ससैन्य बलराम पर्वत पर पहुँचते हैं। इधर अर्जुन को लेकर सपरिवार श्रीकृष्ण वनबिहार के लिए जाते हैं।

नवम सर्ग में युवक-युवतियों को पुष्पचयन करते दिखाया गया है। दिनभर इस कार्य में लिप्त रहने के बाद सभी विश्राम करने लगते हैं।

दशम सर्ग में पुनः मूल कथानक के साथ सम्पृक्ति होती है। सुभद्रा को जलक्रीड़ारत देखकर अर्जुन उनके प्रति विशिष्ट संवेदना से भर उठते हैं। एक दूसरे के प्रति आकर्षण का भाव यहाँ कवि द्वारा सम्प्रेषित किया गया है।

एकादश सर्ग में अर्जुन और सुभद्रा के मध्य, पारस्परिक वियोग का मर्मस्पर्शी वर्णन देखा जा सकता है। उदासीनता का यहाँ असाधारण भावाभिव्यक्ति पूर्ण वर्णन देखा गया है। सुभद्रा अर्जुन के पास दूत भेजती है और उन्हें रैवतिक उद्यान में मिलने के लिए बुलाती है।

द्वादश सर्ग में कामदेवता के पूजन के बहाने सुभद्रा उद्यान में पहुँच जाती है। वहीं मिलन के उपरान्त अर्जुन सुभद्रा का हरण कर लेते हैं। इस अपहरण की सूचना पाकर बलराम सात्यकि को अर्जुन के पीछे सेना लेकर पीछा करने के लिए कहते हैं। इस अवस्था में श्रीकृष्ण मध्यस्थ बनकर इस मनमुटाव का निपटारा करते हैं। बलदेव श्रीकृष्ण के समझाने पर जाकर शान्त होते हैं।

त्रयोदश सर्ग के अन्तर्गत सात्यकि और अर्जुन के मध्य हुए भीषण युद्ध का वर्णन है। इसी युद्ध के समय बलदेव युद्धभूमि में जाकर युद्ध रोकने का आदेश देते हैं।

चतुर्दश सर्ग में युद्ध के समापन का प्रसंग है। श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर द्वारका लौटते हैं।

पंचदश सर्ग में अर्जुन और सुभद्रा के विवाह का वर्णन है। स्वयं बलराम यह पाणिग्रहण सम्पन्न करवाते हैं और यही आकर कथानक का अन्त होता है।

नरनारायणानन्द महाकाव्य के आधार स्रोतः महाभारत से प्रसंग-साम्य

वस्तुपाल रचित नरनारायणानन्द काव्य का आधार महाभारत है। इस काव्य के मूल प्रतिपाद्य के रूप में श्रीकृष्ण और अर्जुन की पारस्परिक मित्रता को ही दर्शाया गया है। महाभारत में वर्णित प्रस्तुत प्रसंग और नरनारायणानन्द महाकाव्य के अन्तर्गत विशेष साम्य है। आचार्य राजेन्द्र मुनिजी लिखते हैं—

"महाभारत के आदि पर्व के अन्तर्गत 217 से 220वें अध्याय तक यह कथा वर्णित है। कथा की रूपरेखा कतिपय बिन्दुओं में प्रस्तुत की जा सकती है—

(क) अर्जुन से मिलनार्थ श्रीकृष्ण का रैवतिक पर्वत पर आगमन।

(ख) बलराम का भी सपरिवार एवं सेना सहित पर्वत पर आगमन।

(ग) जल-क्रीड़ा प्रसंगकालीन सुभद्रा और अर्जुन का परस्पर मुग्ध होगा।

(घ) अर्जुन द्वारा सुभद्रा का अपहरण होना।
(ङ) सात्यकि एवं अर्जुन के मध्य युद्ध संघटित होना।
(च) श्रीकृष्ण की मध्यस्थता में युद्ध का समापन।
(छ) अर्जुन सुभद्रा का विवाह।"[62]

कवि ने महाभारत को ही अपने कथानक का आधार बनाया है। प्रस्तुतीकरण की भिन्नता के साथ यही कथा पुनः विवेचित की गई है। घटनाक्रम के आकार प्रकार देखते हुए, इसे काव्यात्मक प्रबन्ध तो कहा जा सकता है, परन्तु विस्तृत विषयगत फलक के न होने पर इसे महाकाव्य भी नहीं कह सकते।

इस मामले में डॉ. हरिमोहन गौड़ का कहना हैं—

"नरनारायणानन्द काव्य सामान्य तौर पर महाकाव्योचित गुणात्मकता से सम्पृक्त होने के बावजूद मूलतः प्रबन्ध-काव्य की कोटि का है। जो इन्हें महाकाव्य मानते हैं, उनके लिए कथानक का सर्गबद्ध होना एक प्रधान कारण है। परन्तु यह लक्षण प्रबन्ध काव्य का है। खण्ड काव्य में भी सर्गबद्धता पाई जाती है। इस काव्य में नायक के जीवन की एक ही घटना वर्णित है। समग्र जीवन इसमें चित्रित नहीं है। काव्य की रचनात्मक केन्द्रीयता में श्रीकृष्ण और अर्जुन की मित्रता ही प्रमुख रही है। पर उसी बात तक वह सीमित भी हैं। इन सभी कारणों के चलते, नरनाराय''ानन्द काव्य को महाकाव्य के ध्यानस्थ पर खण्ड काव्य माना जा सकता हैं।"[63]

अर्जुन इस प्रबन्धकाव्य का नायक है। बलदेव यहाँ प्रतिनायक है, जो सुभद्रा-प्राप्ति के पथ पर नायक के लिए बाधक बनते हैं। अन्य पात्रों में श्रीकृष्ण, सुभद्रा, सात्यकि आते हैं। नरनारायणानन्द काव्य में इस प्रकार अलंकृत शैली का प्रयोग तथा प्रकृतिगत स्थितियों की

62. शास्त्री, आचार्य राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ 67
63. गौड़, डॉ. हरिमोहन, जैन महाकाव्यों में देश व दर्शनः भारतीय संस्कृति के विस्मृत अध्याय, पं. जयनारायण वार्ष्णेय स्मृति ग्रन्थ, बिजनौर, 1968, पृष्ठ 283

योजना है। दिन-रात, ऋतु-वर्णन, सभी जीवन के साथ-साथ आवर्तित होते रहते हैं। प्राकृतिक सहजता के बीच नर और नारायण की दिव्य मैत्री से 'नरनारायणानन्द' काव्य सुशोभित है।

चरित्र-चित्रण :

इस काव्य में अर्जुन, श्रीकृष्ण, सुभद्रा, बलराम, सात्यकि तथा वनपाल नामक दूत आदि प्रमुख चरित्र हैं। इन सभी में नर और नारायण के रूप में अर्जुन तथा श्रीकृष्ण का चारित्रिक विकास विशेष तौर पर प्रतिभासित होता है। अर्जुन के चारित्रिक वैशिष्ट्य में सौन्दर्य, शक्ति और शील का समाहार दिखाई देता है। सुन्दर प्रकृति का प्रेमी, पराक्रमी और सहृदय व्यक्तित्व के रूप में अर्जुन का चरित्र बेजोड़ है। सुभद्रा के प्रति उसकी व्याकुलता दर्शनीय है। मित्र श्रीकृष्ण के परामर्श से सुभद्रा के अपहरण की बात वे मन में ठानते हैं। अपने मित्र अर्जुन की गुणावली का परिचय देते हुए श्रीकृष्ण बलराम से पहले हैं।

'हरिः पर इवैश्वर्ये शास्त्रे गुरुविपारः।
स्मरोऽन्य इव सौन्दर्ये शौर्ये किन्तु स एव सः।।' –12-78

कृष्ण कहते हैं–

"अर्जुन ऐश्वर्य में विष्णु, ज्ञान में गुरु अर्थात् बहस्पति समान, सौन्दर्य में कामदेव समान तथा शौर्य में वह अपने समान अकेला ही है। डॉ. नेमिचन्द्र जैन का कथन यहाँ द्रष्टव्य है कि–यद्यपि कथावस्तु अत्यल्प है, तो भी चरित्रों का विकसित स्वरूप सुन्दररुपेण चित्रित है।"[64]

इस तरह हम देख पाते हैं कि 'आनन्द' नामान्त (महा) काव्यों में मित्रता, आनन्द तथा उल्लास का एक वातावरण व्याप्त रहता है। भावनाओं का मनोरम चित्रण यहाँ विशेष तौर पर अभिव्यक्त हुआ है। उदात्तभावना और स्वार्थत्याग अपने आप में ऐसे काव्य में परिलक्षित होते हैं।

रस-अभिव्यंजना

कविवर वस्तुपाल ने रसात्मक काव्य-वर्णन में विशेष दक्षता

अर्जित की है। श्रृंगार, वीर, रौद्र, वीभत्स आदि रसों का सुन्दर समायोजन इस काव्य में हुआ है।

श्रृंगार वर्णन का एक उदाहरण देखें—

'नारार्द्रचीरान्तरदृश्यमान-सर्वांगलावण्यविशेषरम्याम्।
पश्यन्निमां मन्मथमथ्यमानचेताश्चिर चिन्तयतिस्म पार्थ।।'[65]

श्लोक का भाव यह है कि पार्थ सुभद्रा के अंग प्रत्यंगों के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है। आर्द्रवस्त्रों के भीतर से उसका कुसुमवत् आकुलित लावण्य पार्थ के हृदय में सम्भोगेच्छा उत्पन्न कर देता है।

संयोग की तरह वियोग श्रृंगार का वर्णन भी अत्युत्कृष्ट है। अर्जुन और सुभद्रा की विरह पीड़ा का कवि ने वर्णन किया है—

'किमु चन्दनचर्चनं वृथा विहितं वक्षसि ताप शान्तये।
अमुना दयितास्मितप्रभा-स्मृतिपीजेन हहा हतोऽस्म्यहम।।'[66]

इस श्लोक में सुभद्रा आलम्बन विभाव है। चन्दन-चर्चन, उशीरादि का लेप उद्दीपन विभाव है। वक्ष या शय्या में मुँह छिपाना अनुभाव है। स्मृति, हर्ष, लज्जा, विबोध आदि संचारी भाव हैं। इन सभी भावों से परिपुष्ट रति स्थायीभाव है। विप्रलंभ श्रृंगार का यही द्योतक है।

भाषा-शैली :

यह काव्य, अपनी अलंकृत भाषा-शैली के लिए चर्चित है। चतुर्दश सर्ग में कवि ने चित्रालंकार का उपयोग किया है और एकाक्षर, द्‌यक्षर, चतुराक्षर, षडक्षर, अन्तस्थ, दन्त्य, तालव्य, ओष्ठ्य तथा मुर्धन्य आदि वर्ण प्रयोग के द्वारा भाषाशैली को कलापूर्ण रूप प्रदान किया है।

---

64. जैन, डॉ. नेमिचन्द्र, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, पृष्ठ 338
65. नरनारायणानन्द महाकाव्यम्, 10-53
66. नरनारायणानन्दमहाकाव्यम्, 11-11

छन्द-योजना

अपने समस्त काव्य सर्गों कवि ने भिन्न-भिन्न छंदों का प्रयोग किया है। इन छन्दों में इन्द्रवज्रा, उपजाति, शार्दूल-विक्रीड़ित, प्रमिताक्षरा, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, रथोद्धता, स्रग्धरा, मालिनी, शिखरिणी, द्रुतविलम्बित, आर्या, ललिता और अनुष्टुप् आदि छन्दों का बहुल प्रयोग हुआ है। कवि छन्दपारंगम हैं और सही रीति से उन्होंने इनका सम्प्रेषण भी किया है।

(घ) नेमिनाथ महाकाव्यम् (कीर्तिरत्नसूरि)

जैन संस्कृत कृष्णकाव्यों में कविवर कीर्तिरत्नसूरि विरचित नेमिनाथ महाकाव्यम् का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। जैन धर्म के बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का प्रेरक चरित्र इस महाकाव्य में विशेष विस्तार के साथ बारह सर्गों में प्रस्तुत किया गया है। यह काव्य भावपक्ष एवं कलापक्ष के मेल का एक अनुपम उदाहरण है।

नेमिनाथ महाकाव्यम् का महाकाव्यत्व

महाकाव्य के जो मापदंड निश्चित व निर्धारित किए गए हैं, उनमें सभी नियमों का कवि ने पालन किया है। शृंगार रस को इस काव्य में अंगीरस के रूप में स्वीकारा गया। धीरोदात्त देवतुल्य नायक नेमिनाथ, क्षत्रिय कुल प्रसूत हैं। धर्म व मोक्ष प्राप्ति इसका उद्देश्य है। जैन पुराण के मुख्य आधार पर इसकी रचना हुई है। तमाम सारे महाकाव्यिक बिन्दु इससे जुड़े हुए हैं।

'मुख सन्धि प्रथम सर्ग के अन्तर्गत है जहाँ शिवादेवी के गर्भ में जिनेश्वर के अवतरण की कथा है। काव्य के फलागम का बीज यहाँ निहित है। उसके प्रति पाठक की उत्सुकता यही से जागृत होती है। द्वितीय सर्ग में स्वप्न दर्शन से लेकर तृतीय सर्ग में पुत्र जन्म तक प्रतिमुख सन्धि स्वीकार की जा सकती है। चतुर्थ से अष्टम सर्ग तक गर्भसन्धि की योजना की गई है। नवम से एकादश सर्ग तक एक ओर

नेमिनाथ द्वारा विवाह प्रस्ताव की स्वीकृति से मुख्य फलप्राप्ति में बाधा उपस्थित होती है। परन्तु दूसरी ओर अबोध, निष्पाप पशुओं के चीत्कार से विचलित नेमिनाथ के दीक्षाग्रहण कर लेने से फल प्राप्ति निश्चित हो जाती है। यहाँ विमर्श सन्धि का निर्वाह हुआ है। एकादश सर्ग के अन्त में केवलज्ञान तथा द्वादश सर्ग में शिवत्व प्राप्त करने के वर्णन में निर्वहण सन्धि विद्यमान है। महाकाव्य के लक्षणानुसार ही नगर, पर्वत, वन, दूतप्रेषण, सैन्यप्रयाण, युद्ध, पुत्रजन्म, षड्ऋतु आदि के विस्तृत वर्णन पाए जाते हैं। आरम्भ नमस्कारसूचक मंगलाचरण से किया गया है। भाषा शैली में उदात्तता है। शीर्षक व सर्गों का नामकरण भी महाकाव्योचित है। सज्जन-प्रशंसा, खल-निन्दा जैसी काव्य रुढ़ियों का उपयोग किया गया है।'

पौराणिक महाकाव्यों के अनुरूप शिवादेवी के गर्भ में जिनेश्वर का अवतरण, फलस्वरूप चौदह दिव्य स्वप्नों को देखना यहाँ बताया गया है। उनका स्नानोत्सव स्वयं देवराज सम्पन्न करते हैं। इस काव्य का पर्यवसान शान्त रस में हुआ है। काव्य नायक दीक्षित होकर केवलज्ञान व शिवत्व को प्राप्त करते हैं। अतः शास्त्रीयता के साथ-साथ पौराणिकता को भी यह काव्य समाहृत करता है। अलंकारों का भावपूर्ण विधान, काव्य-रुढ़ियों का विनियोग, तीव्र रस-व्यंजना, सुमधुर छन्दोपयोग आदि कई विशेषताएँ 'नेमिनाथमहाकाव्यम्' के शास्त्रीय महाकाव्यत्व को सिद्ध करता है।[67]

कवि परिचय और समयकाल

आलोच्य काव्यकृति में इसके रचयिता कीर्तिराज के विषय में कोई जीवन-परिचय नहीं प्राप्त होता है। इस विषय पर विद्वानों का कथन है–

"According to the historical reports,we find that the poet Kirtiraja was a famous religious Acharya

67. त्रिवेदी, डॉ. अभिनव दत्त, जैन काव्य का मध्ययुगीन सन्दर्भ, सरोज प्रकाशन, लखनऊ, 1983, पृष्ठ 36-37.

mentored in the famous Kharataragachha Lineage. He belonged to the Sankhawat gotra and was the youngest son of Deepa who was the descendant of Shah Kochar. He was born in 1445 Vikram Samvat from the womb of Devalde, wife of Deepa.[68]

अन्य सूत्रों से प्राप्त तथ्यों से पता चलता है कि कविवर कीर्तिराज के जन्म का नाम देल्हाकुँवर था। चौदह वर्ष की उम्र में आपने आचार्य जिनवर्द्धनसूरि से दीक्षा प्राप्त की। तदनुसार, इसके बाद आप कीर्तिराज या कीर्तिरत्नसूरि के नाम से पहचाने गए। सम्वत् 1457 में गच्छनायक जिनभद्रसूरि ने उन्हें आचार्य पद प्रदान किया। तथ्यानुसार देखते हैं कि विक्रम संवत् 1525 में तिहत्तर (73) वर्ष की आयु में इनका देहावसान हुआ।[69] नेमिनाथ महाकाव्यम् की रचना विद्वानों के अनुसार सम्वत् 1480 से 1497 के बीच सम्पन्न हुआ। यहाँ यह तथ्य भी अत्यन्त उपयोगी है कि कीर्तिराज को सम्वत् 1480 में उपाध्याय पद से अलंकृत किया गया था।

नेमिनाथ-महाकाव्यम् : कथानक-पक्ष

'नेमिनाथ महाकाव्यम्' का कथानक निम्नलिखित प्रधान बिन्दुओं में बाँटा जा सकता है—

प्रथम सर्ग

या... समुद्रविजय की पत्नी शिवादेवी के गर्भ में बाइसवें तीर्थंकर का अवतरण। राजधानी सूर्यपुर का रोचक, काव्यिक वर्णन।

द्वितीय सर्ग

शिवादेवी द्वारा चौदह सपनों को देखना। भावी में पुत्रप्राप्ति के लक्षण। भविष्य में चतुर्दिशाओं को जीतकर अधिपति बनने का उल्लेख है। साथ ही प्रभात का बड़ा ही मार्मिक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

68. Tyagrajan, Dr. M. 'Recent Studies in Jaina Poetic Epistemology' Esskay publishers, 1969, p. 73-74.

तृतीय सर्ग

पुत्रजन्म का विस्तृत वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग

दिक्कुमारियों द्वारा सूति कर्म करना।

पंचम सर्ग

इंद्र शिशु के जन्माभिषेक के लिए उसे मेरूपर्वत पर ले जाते हैं।

षष्ठ सर्ग

स्नानोत्सव का वर्णन है।

सप्तम सर्ग

पुत्र जन्म के समाचार से समुद्रविजय का आनन्द विभोर होना, बन्दियों को मुक्त करना, जीव-वध पर प्रतिबंध लगाना तथा शिशु का नामकरण (अरिष्टनेमि) होने का वर्णन है।

अष्टम सर्ग

अरिष्टनेमि के सौन्दर्य का तथा परम्परागत षड्ऋतुओं का हृदयग्राही वर्णन है। इसी के साथ शक्ति परीक्षा में कृष्ण को पराजित करने का असाधारण वर्णन है।

नवम सर्ग

माता-पिता द्वारा विवाह का आग्रह, तथा नेमिनाथ द्वारा उनको अस्वीकार करना दिखाया गया है। परन्तु माता-पिता के आग्रहवश उग्रसेन की पुत्री राजीमती के साथ विवाह के लिए तैयार होना दिखाया गया है।

दशम सर्ग

नेमिनाथ का वधूगृह जाना दर्शाया गया है। वधूगृह में बारात हेतु

---

69. मोतीचन्द, डॉ. युगलकिशोर (सं.), जैन पट्टलेख संग्रह, तृतीय संग्रह, भँवरीबाई जैन वेलफेयर ट्रस्ट, मुम्बई, पृष्ठ 39-40

पशुओं की करुण चीत्कार सुनकर वे विवाह को बीच में ही छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

एकादश सर्ग

इस सर्ग में राजीमती का नेमि-वियोग से उत्पन्न विलाप का वर्णन है। कवि ने प्रतीक और उपमाओं के द्वारा वियोग की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। इस सर्ग में मोह और संयम के बीच युद्ध की बात कही गई है। इसमें मोह पराजित होकर नेमिनाथ का हृदयदुर्ग छोड़ देता है। इसी के साथ उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

द्वादश सर्ग

इसमें श्रीकृष्ण का दर्शनार्थ जाना, देशना और उपदेश श्रवण कर कई लोगों द्वारा संयम-व्रत ग्रहण करना आदि का सुन्दर वर्णन है। कथानक अत्यल्प होने के साथ-साथ, कवि द्वारा विस्तृत वर्णन है।

सौन्दर्य एवं रसात्मकता

नेमिनाथ महाकाव्यम् के अन्तर्गत काव्यात्मक सौन्दर्य तथा रसात्मक अभिव्यंजना का युग्म मेलबंधन विशेष तौर पर दिखाई देता है। कुछ एक पात्रों का शारीरिक सौन्दर्य वर्णन, कवि द्वारा असामान्य बन पड़ा है। चाहे नख शिख वर्णन हो, नवीन उपमान-वर्णन हो, हर स्थान पर कवि ने अपने ज्ञान और प्रातिभ-शक्ति का भरपूर प्रयोग किया है। शरत्कालीन ऋतु के वर्णन से आपूरित एक श्लोक देखें—

'शरददभ्रजला कलगर्जिता स चपला चपलानिलनोदिता।
दिवि चचाल नवाम्बुदमण्डली, गजघटेव मनोभवभूपते।।'

प्रकृति के विविध रूप एक ही ऋतु के द्वारा कितना विमोहक चित्र निर्माण कर सकता है, प्रस्तुत श्लोक उसी का उदाहरण है।

इस काव्य में कुछ एक पात्र ऐसे हैं, जो बड़े ही मनोहर कायिक सौन्दर्य के अधिकारी हैं। उनके उस सौन्दर्य का बड़ा अपरूप चित्रण कवि ने इस काव्य में किया है। चित्रण में रीत्यनुसारी वर्णन के चलते सौन्दर्य के साथ कहीं कामुकता का भाव भी झलकता है—

वृतादुकूलेन सुकोमलेन विलग्नकांचीगुणजात्यरचना।
विभाति यासां जघनस्थली सा मनोभवस्यासनगब्दिकेव।।

देवांगनाओं की जघनस्थली को कामदेव की आसनगद्दी के रूप में चित्रित किया गया है।

मनोरागों का चित्रण करने में कीर्तिराज अत्यन्त कुशल कवि हैं। साधारण से साधारण प्रसंगों में भी वे अत्यन्त रसात्मक अनुभूति को सम्प्रेषित करते हैं। श्रृंगाररस यहाँ अंगीरस के रूप में चित्रित हैं। ऋतुवर्णन के साथ-साथ श्रृंगार का रमणीय चित्र भी यहाँ उपस्थित है-

'उपवने पवनेरितपादपे, नवतरं बन रंतुमनाः परा।
सकरुणा करुणावचये प्रियं, प्रियतमा यतमानमवारयत्।।'

नायिका की कामाकुलता के चलते उपवन के मादक प्रभाव से नायक के प्रति उसकी आकुलता बढ़ने लगी है। वह उस लड़के पर रीझ गई है। इस बात में आश्चर्य की क्या बात है?

चरित्र चित्रण

संक्षिप्त कथानक वाले इस काव्य के अन्तर्गत पात्र भी सीमित हैं। कुछ प्रमुख पात्रों का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

कथानक नेमिनाथ का चरित्र केन्द्रीयता का स्वरूप निर्माण करता है। इसके अलावा उनके पिता समुद्रविजय, माता शिवादेवी, राजीमती, उग्रसेन, प्रतीकात्मक सम्राट के रूप में मोह तथा संयम और दूत कैतव एवं मंत्री विवेक ही काव्य के पात्र हैं।

हम संक्षेप में एक एक कर प्रमुख पात्रों पर आलोकपात करते हैं।

(क) नेमिनाथ : नेमिनाथ इस काव्य के नायक हैं। देवोचित विभूति के धारक तथा शक्ति के संवाहक हैं। नेमिनाथ जैसे तीर्थंकर के धरा पर अवतरण के फलस्वरूप महाराज समुद्रविजय के सभी शत्रु निस्तेज हो जाते हैं। सूतिकर्म दिक्कुमारियाँ करती हैं और जन्माभिषेक

स्वयं इंद्रदेव करते हैं। प्रथम चरण से ही नेमिनाथ विराग व विरक्ति के प्रतिमूर्ति स्वरूप हैं। उनका यौवन भी वैराग्य की पवित्रता से ओतप्रोत है। वे कहते हैं—

'हितं धमौषधिं हित्वा मूढ़ा कामज्वरार्दिताः।
मुखप्रियमपथ्यं तुं सेवन्ते ललनौषधम्।।'

वास्तविक सुख ब्रह्मलोक में ही है। हितकारी धर्मरूपी औषध के सेवन से मूढ़, कामज्वर से पीढ़ित (मनो) विकार या मानसिक व्याधि दूर होती है। अदम्य कामशत्रु को पराजित करता, उनकी धीरोदात्त व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करता है।

(ख) समुद्रविजय : यदुपति समुद्रविजय कथानायक, तीर्थंकर नेमिनाथ के पिता है। इस चरित्र में सम्पूर्ण राजोचित गुण विद्यमान हैं। एक तेजस्वी शासक के रूप में समुद्रविजय का चरित्रांकन हुआ है। कवि ने समुद्रविजय के बन्दी के मुँह से उनका यशोगान करवाया है। वह कहता है–

'विध्यायनेऽम्भसा वन्हिः सूर्योऽब्देन पिधीयते।
न केनापि परं राजस्त्वत्तेजः परिहीयते।।'

अर्थात् अग्नि और सूर्य का तेज भले शान्त हो जाय, परन्तु उनका पराक्रम अप्रतिहत है। कवि ने यह सिद्ध करना चाहा है कि समुद्रविजय का राज्य पशुबल आधारित सूखे पराक्रम का राज्य नहीं है। वे एक पुत्रवत्सल पिता हैं। अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति हैं। आर्हत धर्मानुराग के वे पराकाष्ठा हैं। यह उन्हें अपने पुत्र, पत्नी और राज्य तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

(ग) राजीमती : इस काव्य की सती नायिका **राजीमती** है। वह सुशील तथा रूपवती है। उन्हें नेमिनाथ की धर्मपत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। परन्तु विधि के विधान से परिवर्तन आ जाता है तथा प्रवृत्तिमार्गी सांसारिक भोगमार्ग को छोड़कर वह निवृत्तिमुखीन मोक्षमार्ग

की तरफ अग्रसर होती है। केवलज्ञानी तीर्थंकर से पूर्व परमपद प्राप्त कर अद्‌भुत सौभाग्य प्राप्त करती है।

(घ) उग्रसेन : भोजपुत्र उग्रसेन का चरित्र मानवीय गुणों से भरपूर है। वह एक ऐसा चरित्र है जो लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के सहयोग से निर्मित है। अन्य पात्रों में शिवादेवी आती हैं, जो नेमिनाथ की मां हैं। इस काव्य में व्यक्ति-पात्र के अलावे प्रतीकात्मक रूप में सम्राट, मोह तथा संयम, राजनीति के कुशल शासकों की भांति आचरण करते हैं।

भाषा शैली

यह काव्य भाषा शैली की दृष्टि से विशिष्ट गरिमामण्डित रहा है। भाषा में प्रांजलता और प्रसादगुण विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। कवि का आधिकारिक प्रभाव भाषा शैली पर दृष्टिगोचर होता है। सरलता और कोमलता, अनुप्रास तथा यमक का युग्म प्रभाव कवि के श्लोक-निर्माण में द्रष्टव्य है—

'विवाहय कुमारेन्द्र! बालाश्चंचललोचनाः।
भुंक्ष्व भोगान् समं ताभिरप्सरोभिरिवामरः।।'

प्रसादगुणसम्पन्न आलोच्य काव्य में सूक्तियों और लोकोक्तियों का विशाल भण्डार है। परन्तु इन सभी गुणों के साथ काव्यात्मक भाषा-शैली में कुछ त्रुटियाँ भी परिलक्षित होती हैं। डॉ. आलोक शुक्ला इस पर मंतव्य करते हैं—

'इस विषय पर कोई दो राय नहीं है कि अपने काव्यात्मक उत्कर्ष में 'नेमिनाथ महाकाव्यम्' अत्युत्कृष्ट होते हुए भी कुछ स्थलों पर विकट समासांत पदावली का प्रयोग हुआ है, जहाँ उसका कोई औचित्य नहीं था। छन्द पूर्ति हेतु कुछ स्थानों में अतिरिक्त पदों को जोड़ा गया है।'[70]

70. शुक्ला, डॉ. आलोक, जैन कवि एवं काव्य : अलंकार विमर्श, अभिनव प्रकाशन, पृष्ठ 203

अलंकार विधान

अलंकार विधान के अन्तर्गत प्रकृति-चित्रण के समान अलंकारों का प्रयोग कवि कीर्तिराज द्वारा किया गया है। अप्रस्तुत प्रयोग कीर्तिराज के काव्य की प्रमुख विशेषता रही है। जीवन के विविध पक्षों से उपमानों को उन्होंने ग्रहण किया है। प्रभुदर्शन से इंद्र का क्रोध ऐसे शान्त हुआ जैसे अमृत पान से ज्वर पीड़ा या वर्षा से दावाग्नि। मार्मिक उपमा प्रयोग के साथ-साथ उत्प्रेक्षा अलंकार का कुशल प्रयोग किया गया है। दूसरे कई अलंकार भी प्रयोग में लाए गए हैं, जिनमें संदेह, विरोधाभास, विषम, व्यतिरेक, विभावना, निदर्शना, सहोक्ति आदि प्रमुख हैं।[71]

काव्य रचना सौष्ठव

कवि कीर्तिराज ने संस्कृत के महाकवि भारवि की तरह, अन्तिम सर्ग में चित्रकाव्य के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया है। हाँलाकि ऐसे पद्य संख्या में काफी कम हैं। यहाँ उनके पाण्डित्यपूर्ण रचना-सौष्ठव का एक उदाहरण दिया जा रहा है, जहाँ एकाक्षरानुप्रास द्रष्टव्य है। एक ही व्यंजना पर यह श्लोक आश्रित है। इसके साथ तीन स्वर भी इसमें प्रयुक्त हुए हैं—

'अतीतान्तेत एताँ ते तन्तन्तु ततताततिम्।
ऋतताँ तां तु तोतोन्तुं, तातोऽतताँ ततोन्ततुम्।।'

जहाँ तक छन्द प्रयोग एवं छन्द विन्यास का सवाल है, एकाधिक छन्दों की योजना इस काव्य में की गई है। प्रथम, सप्तम तथा नवम सर्ग में अनुष्टुप् की प्रधानता है। कुछ एक छन्द मालिनी, उपजाति, उपगीति व नन्दिनी में हैं। सर्गों के अन्तिम श्लोक में उपजाति व मन्दाक्रान्ता छन्दों का उपयोग किया गया है। कुलमिलाकर यह महाकाव्य संतुलित दृष्टिकोण और कवित्व शक्ति के कलात्मक व काव्यात्मक निर्माण का एक अनुपम उदाहरण है।[72]

---

71. वही, पृष्ठ 205

72. वही, पृष्ठ 2016 तथा राजेन्द्र मुनि शास्त्री, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ 77

ङ) सप्तसंधानकाव्य (मेघविजयगणि)

कृति एवं कृतिकार

'सप्तसंधानकाव्य' जैन संस्कृत कृष्णकाव्य में एक अलग ही प्रकार का काव्यग्रंथ है। इस काव्य में समानान्तर रूप से सात महापुरुषों के वर्णन सम्मिलित हैं। ये महापुरुष हैं– ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, श्रीराम और श्रीकृष्ण। सात सर्गों में इन सात महापुरुषों का जीवन वृत्त अभिव्याप्त है।

सप्तसंधान महाकाव्य के रचयिता प्रख्यात विद्वान मेघविजयगणि या मेघविजय उपाध्याय हैं। कवि मेघविजय एक विशिष्ट कवि होने के साथ-साथ व्याकरण, ज्योतिष, तर्कशास्त्र आदि विधाओं के परम विद्वान थे। ये श्वेताम्बर धारा के अन्तर्गत तपागच्छ परम्परा से जुड़े थे तथा आचार्य कृपाविजयगणि के ये शिष्य थे।[73]

सप्तसंधानकाव्यकार मेघविजयगणि ने इस महाकाव्य के अलावे देवानन्द महाकाव्य, हस्तसंजीवनं, वर्षप्रबोध-युक्तिप्रबोध नाटक, चन्द्रप्रभा आदि रचनाओं का निर्माण किया है। देवानन्द महाकाव्य की प्रशस्ति में जो उल्लेख मिलते हैं उसमें दिया है–

'मुनिनयनाश्वेन्दुमते वर्षे हर्षेण सादडीनगरे (देवानन्द-प्राप्त-प्रशस्ति)'[74]

उल्लेखानुसार यह रचना विक्रम संवत् 1727 (1670 ई.) की प्रतीत होती है। कवि के समयकाल के विषय में हम इससे एक अनुमान

---

73. देखिए, Tomar, Dr. Shailendra Singh, 'On Some Lesser Known Poets of Sanskrit Jain Poetry', Paper presented at the National Seminar on Sanskrit Studies, Mysore and शिव प्रसाद, तपागच्छ का इतिहास, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी।
74. देखिए, बरनवाल, डॉ. तिलक, जैनप्रशस्तियाँ : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, उदयनारायण तिवारी शोध संस्थान ग्रन्थमाला–19, इलाहाबाद, 1961, पृष्ठ 103

लगा सकते हैं। 'सप्तसंधान' की रचना 1760 (1703 ई.) में सम्पूर्ण हुई थी। इसका प्रमाण यह श्लोक हैं—

'बिन्दुरसमुनीन्दूनां प्रमाणात् परिवत्सरे कृतोयमुद्यमः (सप्तसंधानप्राप्तप्रशस्ति)'

इस प्रकार हम मूल तौर पर इस महाकाव्य के सम्बन्ध में एक प्राथमिक छवि प्राप्त कर सकते हैं।

सप्तसंधानकाव्य : कथानक प्रसंग

प्रथम सर्ग– गंगा और सिन्धु, दो ऐतिहासिक तथा पवित्र नदियाँ भारत क्षेत्र में प्रवाहित होती हैं। इस क्षेत्र में ऐतिहासिक रूप में व्याप्त जो जनपद हैं, उनमें कोशल, कुरु, मध्य (प्र) देश और मगध हैं। इन्हीं जनपदों में अयोध्या, हस्तिनापुर, शौर्यपुर, वैशाली, वाराणसी, मथुरा, कुण्डपुरी आदि प्रसिद्ध नगर हैं। तीर्थंकरों की जन्मस्थली के रूप में ये सभी स्थान धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक दृष्टिकोण से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। अयोध्या में आदिनाथ (ऋषभदेव) और श्रीरामचन्द्र का जन्म हुआ। हस्तिनापुर में तीर्थंकर शान्तिनाथ तथा शौर्यपुर में तीर्थंकर अरिष्टनेमि ने जन्म लिया। इसी प्रकार वाराणसी में पार्श्वनाथ ने तथा वैशाली में वर्धमान महावीर ने जन्म लिया एवं इनके साथ श्रीकृष्ण का जन्म भी मथुरा में हुआ। ये सारे नगर इन महान पुरुषों के नामों से जुड़कर धन्य हुए हैं। अपने समयकाल में अयोध्या में नाभिराय और दशरथ ने राज्य किया। उसी तरह हस्तिनापुर में विश्वसेन, शौर्यपुर में समुद्रविजय, वाराणसी में अश्वसेन तथा कुण्डपुर में राजा सिद्धार्थ का राज्य था। इन यशस्वी नरेशों की रानियों ने दिव्य स्वप्न के दर्शन किए थे। परिणामस्वरूप इनके द्वारा पुत्र प्राप्ति की आशा संभावित सच्चाई बनकर उभरने लगी।

द्वितीय सर्ग– गर्भवती रानियों से यथासमय सात महान पुरुषों (ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्धमान, राम और श्रीकृष्ण) ने जन्म लिया। चतुर्निकाय के देवतागण इन पावन अवसरों पर

जन्मस्थलियों (अयोध्या, हस्तिनापुर, शौर्यपुर, वाराणसी और कुण्डपुर) में पहुँचे। इनमें से प्रथम पाँच महापुरुषों का इन्द्र ने सुमेरू पर जन्माभिषेक सम्पन्न किया।

तृतीय सर्ग– तीर्थंकरों का नामकरण सम्पन्न होता है। सात शिशु क्रमशः बड़े होते हैं। वे बालक्रीड़ा में लिप्त होते हैं। उचित वयःप्राप्ति पर इनका विवाह सम्पन्न होता है।

चतुर्थ सर्ग– तीर्थंकरत्व के परिणामस्वरूप देश में समृद्धि बढ़ने लगी। ऋषभदेव को बाहुबली आदि पुत्र प्राप्त हुए इधर श्रीकृष्ण पाण्डवों से जुड़ते हैं। असाधारण शाब्दिक निपुणता और काव्यात्मक कौशल के द्वारा कवि सात महापुरुषों का जीवन वृत्तान्त सम्प्रेषित करते हैं। इधर राम का बनवास होता है, भरत विरक्त होकर शासनकार्य सम्हालते हैं। तीर्थंकरगण दीक्षित होने का उपक्रम करते हैं।

पंचम सर्ग– इस सर्ग में दीक्षा के उपरांत तीर्थंकरों के विहार करने का उल्लेख है। पाँच तीर्थंकर तपसाधना में प्रवृत्त हो जाते हैं। राम, लक्ष्मण और सीता का वनबिहार आगे बढ़ता है और रावण द्वारा सीताहरण होता है।

दूसरी तरफ श्रीकृष्ण और पाण्डव गहरी मित्रता के बन्धन में बँधते हैं। द्वारका की सुरक्षा और सुदृढ़ता अधिकाधिक बढ़ाई जाती है। शिशुपाल और जरासंध द्वारिका पर आक्रमण करने के लिए सीधे-सीधे प्रस्थान करते हैं।

षष्ठ सर्ग– इस सर्ग में तीर्थंकरों के केवलज्ञान की प्राप्ति का प्रसंग आया है। उसी प्रकार श्रीराम को (रावण के साथ संघटित युद्धोपरांत) अर्धचक्री पद की प्राप्ति होती है।

सप्तम सर्ग– इस सर्ग में तीर्थंकरों के समवशरण की रचना का प्रसंग है। मुनिमण्डलियों के साथ उन्हें विहार करते दर्शाया गया है।

उनके उपदेशों से पूर्ण प्रभावित होकर वैराग्य व विरक्ति से विभावित अनेक राजा-महाराजा दीक्षा ग्रहण करते हैं।

अष्टम सर्ग– इस सर्ग में ऋषभनन्दन भरत चक्रवर्ती के दिग्विजय अभियान पर प्रस्थान करने का जिक्र है। वे विजय प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्षगमन के पश्चात भरत उनके द्वारा परिपालित भूमि (भारतवर्ष) की रक्षा करते हैं।

नवम सर्ग– जगत भर में तीर्थंकरों का यश परिव्याप्त हो जाता है। श्रीराम अयोध्या के नरेश हो जाते हैं। परवर्ती समयकाल में वे कठोर तपस्या द्वारा निर्वाण प्राप्त करते हैं। ऋषि द्वैपायन द्वारा द्वारिका का विनाश होता है तथा बलराम तपस्या कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

डॉ. निर्मल कुमार जैन मेघविजयगणि द्वारा प्रणीत 'सप्तसंधान महाकाव्य' के विषय में लिखते हैं—

"प्रस्तुत महाकाव्य का कथानक सात सर्गों में विभाजित है। मेघविजय ने सातों सर्गों के साथ असामान्य रूप से न्याय किया है। सात कथानक सात महान पुरुषों के जीवन वृत्त के साथ समानांतर रूप में स्वच्छन्द रहता है, जो काव्यकृति की परम विशिष्टता है। यह कवि की आनुभविक सच्चाई है। समानांतरता का यह प्रवाह, कवि के प्रगाढ़ पाण्डित्य का निदर्शन है। श्लेष द्वारा एक-एक शब्दावली से सात-सात भिन्नार्थों का सम्प्रेषण कर पाना अपने आप में एक अद्‌भुत चमत्कार है। इस महाकाव्य के कथानक सूत्रों का चयन 'हरिवंशपुराण' तथा 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र' आदि प्रतिष्ठित ग्रंथों से किया गया है। अस्तु, काव्य के रूप में 'सप्तसंधान' अपनी अर्थवत्ता और अलंकार-प्रयोग के लिए शाश्वत महत्त्व रखता है।"[75]

---

75. जैन, डॉ. निर्मल कुमार, मेघविजयगणि और उनका सप्तसंधानकाव्य : एक अध्ययन 1980, पृष्ठ 198

संप्तसंधान : महाकाव्यत्व का मूल्यांकन

अपने पूर्ववर्ती पुराणपरक काव्य तथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र से कवि ने कथानकीय उपादानों को इकट्ठा किया है। महाकाव्यत्व के दृष्टिकोण से प्रस्तुत काव्य शतशः सिद्ध होता है। सर्गबद्ध कथावस्तु, स्तुतिरूप मंगलाचरण किया गया है। विद्वानों का मानना है–

"The basic formulative structure, both epistemologically and etymologically point to the vibrant factors, which has created such an epical poetic aura, surely possesses the inherent energy which Meghavijayganl's 'Saptasandhan Kavya' reflects in all its zeal."[76]

दुर्जन-निन्दा, सज्जन प्रशंसा, देश, नगर, नदी, पर्वत आदि का वर्णन, कथा के नायकों का चरित्र, भिन्नतर रसों का उपयोग, ऋतु-चित्रण, वैचित्र्यपूर्ण भावधाराओं के बीच समन्वय, युद्ध, विवाह, तपस्या, जन्म, दीक्षा आदि सभी प्रसंग यहाँ काव्यग्रंथ में देखें जा सकते हैं। केवलज्ञान उत्सव के साथ चतुर्वर्ग फल प्राप्ति की बात इस काव्यग्रन्थ में की गई है।

सप्तसंधानकाव्य : रसनिरुपण

प्रस्तुत काव्य में अंगीरस के रूप में शान्त रस उभरकर आया है तथा अंग रसों के रूप में वीर, भयानक, श्रृंगार और करुण रस का नियोजन किया गया है। सातों ही कथा के नायक जीवन के उत्तरकाल में पूरी तरह से विरक्त होकर तपश्चरण करते हैं तथा निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

शान्त रस निरूपण की प्रक्रिया में निर्वेद स्थायीभाव की व्यंजना का एक उदाहरण देखें–

---

76. Desai, Prof. Anubhav, 'On the Epistemological Factors of Jaina Epics', Journal of the Institute of Indology, Vol XV, March Issue, p. 1210

सविषयो विषयोजनभक्ष्यवत्, सुमनसां मनसां भयकारणम्।
भुविदितो विदितो पि तदामया, शवरसंवरसंकलितोऽभवत्।।[77]

उपरोक्त श्लोक में भावात्मक स्तर पर यह कहा गया है कि विषयों की अभिलाषा विषमिश्रित भोजन के सेवन करने के समान है, अतः विषय की इच्छा विचारशील व्यक्तियों के हृदय में भय उत्पन्न करता है। अस्तु, इस जगत्प्रसिद्ध विषय-अभिलाषा को त्याग करने के लिए संवर की चर्चा द्वारा कवि मेघविजयगणि ने निर्वेद को अभिव्यंजित किया है।

अलंकार सुषमा

सप्तसंधानकाव्य में अलंकारों के त्रिविध प्रकार—शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उपमालंकार की योजना पाई जाती है। अलंकारों में अनुप्रास, यमक, चित्र, शब्दालंकार आदि का वर्णन हैं तो श्लेष भी भीतर ही प्रयुक्त है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोध, अतिशयोक्ति आदि अलंकार प्रधान हैं।

उत्प्रेक्षा—भरतक्षेत्र का कवि द्वारा वर्णन

मूर्धास्य हेमाद्रिरमुष्यचूला, स्वाद्रोहिताभ्रूर्द्युसरिच्चवामा।
सादक्षिणा सिन्धुसरिद् रसाग्रै, तयोः पथस्ते नयने च मन्ये।।[78]

मानवीकरण में ढलते भरतक्षेत्र के बारे में कवि कहते हैं—

इस भरत क्षेत्र का सिर हिमालय पर्वत है और हिमालय में प्रवाहित होने वाली रोहिता नाम की नदी इसकी चूड़ा है। आकाशगंगा वाम भ्रू (भौंह) तथा सिन्धु दक्षिण भ्रू है। नदी निर्गमनलिका इसकी जिह्वा है और गंगा तथा सिन्धु ऊपरीभाग दोनों नेत्र (आँखें) हैं। इस प्रकार हिमालय की कल्पना सिर के रूप में की गई है।

---

77. सप्तसंधानकाव्य, जैन साहित्यवर्धक सभा, सूरत, 8/25
78. वही, 1/21

काव्य-शैली :

'सप्तसंधानकाव्य' की शैली थोड़ी क्लिष्ट है। प्रसादगुण से सम्पृक्त होने के बावजूद श्लेष-प्रयोग से यह काव्य अर्थबोध के स्तर पर काफी दुर्बोध्य है। कोमलकान्त पदावली के साथ अनुप्रास का प्रयोग कवि ने यहाँ अत्यन्त कलात्म्क रूप में किया है।

जैसे— **"दिवानिशं केलिकलाकलापे-रालीषु तालीविधिनोपजापैः।**
सत्यासुदव्या दिवसाः सुखेन सूर्यः सतूयागमयांबभूषुः।।"

इस प्रकार अपने काव्यात्मक व कलात्मक सौष्ठव के द्वारा 'सप्तसंधानकाव्य' जैन श्रीकृष्ण विषयक संस्कृत काव्यों में एक विशिष्ट कृति बन चुकी है।

(च) राघव पाण्डवीय (द्विसंधान) महाकाव्य (धनंजय कवि)

कृति तथा कृतिकार

राघव पाण्डवीय या द्विसंधान महाकाव्य जैन संस्कृत कृष्णकाव्यों में एक उत्कृष्ट कोटि की रचना है। एक ही साथ, इस काव्य में रामायण और महाभारत की कथाओं को प्रस्तुत किया गया है कि उसके दो अर्थ व्यक्त हो जाते हैं। एक अर्थ की सम्पृक्ति रामकथा से है तो दूसरा अर्थ कृष्णकथा से सम्पृक्त है। 'राघवपाण्डवीयकथा' के नाम से इसी कारण यह महाकाव्य प्रसिद्ध है। समानांतर रूप से दो कथानकों के निर्वाह के कारण इस काव्य को 'द्विसंधानम्' के नाम से भी जाना जाता है।

जहाँ तक विद्वानों का मानना है, तथ्य और सामग्री के आधार पर कवि धनंजय 'राघव पाण्डवीय महाकाव्य' के रचयिता है। 'द्विसंधानम्' महाकाव्य की टीका से कवि परिचय हमें प्राप्त होता है। इस रचना के अन्तिम छन्द के रूप में यह श्लोक हमें कवि के वैयक्तिक परिचय से भी अवगत करवाता है। श्लोक है—

'यः श्रीदेव्या मातुनन्दनः पुत्रो वसुदेवतः प्रतिवसुदेवस्य पितुः प्रतिनिधिः' (18/146)

तथ्य हमें यह प्राप्त होता है कि कवि धनंजय के पिता का नाम वासुदेव और माता का नाम श्रीदेवी था। इसी सूत्र से हमें ज्ञात होता है कि इनके गुरुदेव का नाम दशरथ था।

राघव पाण्डवीय महाकाव्य : रचनाकाल

विद्वानों में राघव पाण्डवीय महाकाव्य के रचना सम्बन्धी समयकाल को लेकर मत-मतान्तर रहे हैं। डॉ. के. वी. पाठक के अनुसार कवि धनंजय का समयकाल 1123 से 1140 ई. के मध्य था। डॉ. पाठक के इस मत को डॉ. आर्थर बेरीडेल कीथ (Dr. Arthur Berridale Keith) स्वीकार करते हैं। उनके 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में इस बात के संकेत मिलते हैं।[76] डॉ. कुलभूषण नादकर्णी ने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' में धनंजय के उल्लेख के बारे में स्पष्ट संकेत प्रदान करते हुए अपने वक्तव्य को स्पष्ट किया है—

"Dhananjaya, in fact had been active in the first half of the 11th century. We can hold this statement as a matter of fact because Prabhachandra, the author of 'Prameyakamala Martanda' has mentioned the name of Dhananjaya, the poet of 'Dvisadhanam', in his classic work as mentioned earlier."[77]

इसी प्रकार, 'पार्श्वनाथ चरित' के प्रख्यात रचयिता वादिराज ने अपनी रचना में 'द्विसंधान कर्ता धनंजय' की चर्चा की है। 'पार्श्वनाथ चरित' काव्य की रचना का समयकाल 1024 ई. है। जल्हण के द्वारा उद्धृत राजशेखर का एक श्लोक इस प्रकार है—

---

76. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए, Keith, Arthur Berridale, A History of Sanskrit Literature, 1923, Oxford तथा A Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Indian Institute Library, Oxford, (1904)

77. Nadkarni, Dr. K.B., On the Creativity and Historicity of Medieval Jaina Poetry, paper read at the proceedings of 23rd Indological conference, Hyderabad, 1973

'द्विसंधाने निपुणतां सतां चक्रे धनंजयाः।
यथाजातं फलं तस्य सतां चक्रे धनंजयाः।।'[78]

राजशेखर यहाँ 'काव्यमीमांसा' के रचनाकार हैं। विद्वानों के अनुसार इनका समयकाल दसवीं शताब्दी का है। फलस्वरूप धनंजय का समयकाल दसवीं सदी से पहले का होना चाहिए ऐसा विद्वान मानते हैं। धनंजय के समयकाल को लेकर उन्होंने स्वयं अपनी 'नाममाला' रचना में जैनाचार्य अकलंक का निर्देश किया है। श्लोक है—

'प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
द्विसंधानकवेः काव्यं रत्नत्रयम् पश्चिमम्'।। (श्लोक 201)[79]

अकलंक का समयकाल विद्वानों के अनुसार 720 से 780 ई. है।[80] अतः धनंजय का काल अकलंक के बाद तथा वादिराज से पूर्व का ही हो सकता है। आनुमानिक रूप से उनका समय ईसा की आठवीं शताब्दी के लगभग है।

कथानक का स्वरूप

प्रथम सर्ग के अन्तर्गत ग्रन्थ के आरम्भ में कवि तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ तथा तीर्थंकर नेमिनाथ को नमस्कार करता है। रामकथा तथा श्रीकृष्ण कथा के आरम्भ में युग्मतः अयोध्या और हस्तिनापुर नगरी का वर्णन है। प्रजा जीवन में सुख परिव्याप्त है और इसी का चित्रण है।

द्वितीय सर्ग के अन्तर्गत इसमें दोनों राज परिवारों का वर्णन है। राजा दशरथ का अयोध्या में तथा हस्तिनापुर में राजा पाण्डु का राज है। दोनों की पट्टमहिषियाँ कौशल्या और कुंती हैं। ये दोनों रानियाँ अपने सदाचार और उच्च शील-स्वभाव के लिए विख्यात थीं।

---

78. उपाध्याय, डॉ. बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदामन्दिर, वाराणसी, पृष्ठ 304
79. नाममाला, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 740 ई.
80. Banerjee, Satya Ranjan (ed.), Prolegomena to Prakritica et Jainica Asiatic Society, page 204.

तृतीय सर्ग में कौशल्या के गर्भ धारण करने पर सर्वत्र प्रसारित प्रसन्न वातावरण का वर्णन है। माता कौशल्या से राम का जन्म होता है। कैकेयी के भरत तथा सुमित्रा के लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक पुत्र जन्म लेते हैं। राजा जनक की पुत्री जानकी के साथ राम का विवाह सम्पन्न होता है। उधर पाण्डु की पत्नी, पट्टमहिषी कुंती युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्रों को और माद्री नकुल और सहदेव को जन्म देती है। इन्हें पाण्डव (पाण्डु के आत्मज) के रूप में पहचाना गया। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुए जो कौरव कहलाए।

चतुर्थ सर्ग में वर्णन है कि दशरथ दर्पण में अपने श्वेत केश देखें तथा निश्चय कर लिया कि अब ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य सौंपकर वे तपस्या प्रारंभ करेंगे। कैकेयी ने दशरथ से वर मांगा कि राम चौदह वर्ष के लिए वनवास जाए तथा भरत को अयोध्या का राज्य मिले। राम, सीता और लक्ष्मण वनगमन किए और दशरथ मुनि बने। दूसरी ओर युधिष्ठिर को राज्य सौंपकर पाण्डु ने तपस्या आरंभ करने का निश्चय किया। इधर दुर्योधन ने छलपूर्वक द्युतक्रीड़ा (जुए) में हराकर युधिष्ठिर से राज्य छीन लिया। अतः पाण्डवों को वनवास भोगना पड़ा।

पंचम सर्ग में राम दण्डकारण्य में कदम रखते हैं। लक्ष्मण चन्द्रहास खड्ग यहाँ प्राप्त करते हैं। शूर्पणखा राम पर मोहित होती है किन्तु लक्ष्मण के द्वारा अपमानित तथा राम द्वारा प्रत्याख्यात होने पर सीताहरण के लिए वातावरण तैयार कर देती है। राम-लक्ष्मण राक्षसों का वध करते हैं। उधर पाण्डव विराट राजा के राज्य में पहुँचते हैं। वहाँ कीचक द्रौपदी को देखकर प्रलुब्ध होता है। भीम कीचक का वध कर देते हैं।

षष्ठ सर्ग के अन्तर्गत राम लक्ष्मण तथा खर-दूषण से युद्ध होता है। वे दोनों अपने पराक्रम से खर-दूषण की सेना को पराजित कर देते हैं। युद्ध में खर-दूषण दोनों भाई मारे जाते हैं। उधर पाण्डवों में अर्जुन

और भीम का युद्ध उन दस्युओं के साथ होता है जो गाय चुराने आए थे। वे उनको बंधन से मुक्त करके गायों की रक्षा करते हैं।

सप्तम सर्ग के अन्तर्गत रावण शूर्पणखा को सान्त्वना देते हैं और घटनास्थल पर पहुँचते हैं। दण्डक वन में सीता को देखकर रावण मोहित हो जाता है। छल से वह सीता का अपहरण कर लेता है और लंका की ओर चल देता है। उधर द्युतक्रीड़ा में पराजित, राज्यहीन युधिष्ठिर से भीम कहता है कि 'युधिष्ठिर को कौरवों द्वारा किए गए इस अपमान का प्रतिशोध लेना चाहिए। द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की सहायता से हमें विजय प्राप्त होगी।' यह सुनकर युधिष्ठिर द्वारिका के लिए प्रस्थान करते हैं।

अष्टम सर्ग में इस बात का वर्णन है कि रावण को इस बात की आशा थी कि अपहरण के बाद निराश होकर सीता आत्मसमर्पण करेगी, किन्तु सीता अपने मार्ग पर अडिग रहती है। उधर कवि द्वारिकापुरी के राजभवन के गवाक्षों से युधिष्ठिर को सागर निहारते हुए दिखाते हैं। कवि यह वर्णन करते हैं कि दुर्योधन के अन्याय और निरंकुशता के चलते युधिष्ठिर तड़प रहे थे, किन्तु वे वचन-बद्धता के कारण निरूपाय थे।

नवम सर्ग के अन्तर्गत सीताहरण के कारण राम चिन्तित और दुःखी बताए गए हैं। वे सीता की खोज करते हैं। विद्याधर सुग्रीव की पत्नी का अपहरण करते हुए साहसमति से अनीतिपूर्वक राज्य हथियाता है और उस पर शासन करता है। राम इस अन्याय का प्रचण्ड विरोध करते हैं। किष्किन्धा में भयानक युद्ध के बाद साहसगति मारा जाता है। जरासंध बरभाव रखता है। श्रीकृष्ण पर वह आक्रमण करता है, परन्तु सम्पूर्ण पराजित होता है। द्वारिका में विजय के हर्ष में उत्सव मनाया जाता है। श्रीकृष्ण अर्जुन की वीरता से विशेष प्रभावित होते हैं और अपनी बहन सुभद्रा के साथ उसका विवाह करवाने के विषय पर सोचते हैं।

दशम सर्ग में, लक्ष्मण राजा सुग्रीव के पास जाते हैं और उससे कहते हैं कि तुम्हें सीता की खोज का प्रयत्न करना चाहिए। अन्यथा राम के क्रोध से सभी नष्ट हो जाएंगे। दूसरी तरफ श्रीकृष्ण के पास पुरुषोत्तम नामक दूत आता है, जो कहता है कि आपको जरासंध के साथ मित्रता कर लेनी चाहिए।

एकादश सर्ग में सुग्रीव अपनी राजसभा में चर्चा कर निश्चय करता है कि रावण प्रबल पराक्रमी है अतः विजय-प्राप्ति हेतु मुझे राम से मैत्री कर लेनी चाहिए। विचलित सुग्रीव को जाम्बवान धीरज बँधाते हैं। हनुमान, जाम्बवान और सुग्रीव पुनः विचार विमर्श करते हैं। दूसरी तरफ जरासंध के दूत लौट जाने पर श्रीकृष्ण अपने अनुभवी सहयोगियों के साथ विचार-विमर्श करते हैं। भीम जरासंध के विनाश का विचार करता है। बलराम मध्यस्थता की बात करते हैं।

द्वादश सर्ग में, लक्ष्मण हनुमान, सहित कोटिशिला पहुँचते हैं। वे उस शिला को उठा लेते हैं। दूसरी तरफ कृष्ण भी अपने मित्रों के साथ कोटिशिला पर पहुँचते हैं तथा वे भी शिला को उठा लेते हैं।

त्रयोदश सर्ग में हनुमान को सीता का समाचार लाने लंका जाते हुए दिखाया गया है। हनुमान रावण को सदुपदेश प्रदान करते हैं। वे उन्हें कुमार्ग छोड़कर राम की शरण ग्रहण करने की सलाह देते हैं परन्तु वे उसमें सफल नहीं होते। उधर श्रीकृष्ण का दूत श्रीशैल राजगृह जाकर जरासंध से कहता है कि तुम या तो श्रीकृष्ण की अधीनता स्वीकार कर लो, या कन्दरा में जाकर ध्यान करो।

चतुर्दश सर्ग में राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि द्वारा रावण से युद्ध की तैयारी का वर्णन है। एक तरफ राम की सेना लंका की ओर बढ़ने लगी है, दूसरी ओर श्रीकृष्ण बलराम पाण्डवों के साथ राजगृह की ओर बढ़ते हैं।

पंचदश सर्ग के अन्तर्गत राम की सेना समुद्रतट तक पहुँच गयी और वानर योद्धाओं ने वनविहार तथा जल क्रीड़ाएँ की। उधर यादवगण (यादवनृपतिगण) गंगा किनारे जाकर वन-विहार करने लगे।

सोलहवें या षोडश सर्ग में राम की सेना ने लंका पर आक्रमण कर दिया। यह सुनकर रावण अपनी सेना को तैयार होने का आदेश देता है। दोनों पक्षों की सेनाएँ आमने-सामने आ जाती हैं। राम के प्रचण्ड आक्रमण से रावण का प्रख्यात योद्धा-पुत्र मेघनाद इन्द्रजीत तथा भाई कुम्भकर्ण टिक नहीं पाते हैं। दूसरी तरफ श्रीकृष्ण की सेना जरासंध पर आक्रमण करती है और प्रचण्ड प्रहारों से जरासंध की सेना में आतंक मचा देती है।

सप्तदश सर्ग में रावण की सेना की प्रबलता का चित्रण भी किया गया है। कवि ने वर्णन किया है कि उसके सैनिक कवचधारी थे अतः वाण उनके शरी को भेदने में असमर्थ थे। राम के अग्निवर्षक वाणों के प्रहार से सारीर बाधाएँ दूर हो गई। राम की विजय हुई। दूसरी तरफ श्रीकृष्ण, बलराम, अर्जुन आदि ने जरासंध को घेर लिया। भयंकर बाणों की वर्षा होने लगी और श्रीकृष्ण द्वारा जरासंध का वध हो जाता है।

अष्टादश सर्ग में युद्धोपरांत लंका का राज्य विभीषण को सौंपकर राम-सीता सहित पुष्पक विमान में बैठकर लंका से अयोध्या आ जाते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण जरासंध के पक्ष को पूर्ण ध्वस्त करते हुए पाण्डवों के साथ मित्रता को निबाहते हुए राज्य का संचालन करते हैं।

इस तरह से 'राघव-पाण्डवीय महाकाव्य' या 'द्विसंधान काव्य' में कवि धनंजयं ने राम और कृष्ण के साथ जुड़े कथानकीय सर्गों (प्रसंगों) का आंशिक वर्णन एक साथ किया है। यह सृजनात्मक कार्य

कठिन होते हुए भी कवि इस कार्य में सफलता प्राप्त की है। तीर्थंकरों की स्तुति से प्रारंभ हुए इस महाकाव्य में मंत्रणा, दूत-प्रेषण-युद्धवर्णन, नगर-वर्णन, समुद्र, उद्यान, वन आदि का वर्णन आया है। कथानक संयोजन में हर्ष, शोक, भय, रोष आदि विभिन्न मनोभावों का सुन्दर चित्रण हुआ है। यह रचना काव्य सौन्दर्य के दृष्टिकोण से भी समृद्ध है।

महाकाव्यत्व-मूल्यांकन

'द्विसंधान काव्य' की राम-कृष्ण कथा अठारह सर्गों में विभक्त है। काव्य का आरम्भ तीर्थंकरों की वंदना से हुआ है। आधारभूत इतिवृत्त पुराण प्रसिद्ध है। डॉ. आनन्द सदाशिव मोहिते इस पर लिखते हैं—

"The poetic epic of 'Dvisandhana Kavyam' is multifariously knitted into different descriptive units, which serve as a major basis regarding the development of poetics. Descriptions of mutual discussions, sending messengers, description of battles and prosperous cities are abundantly prevalent in this epic. Seas, mountains, seasons, Moon, Sun, Trees, Gardens, festive occasions are all described in the social contemporaneity amidst the dichotomic descriptions of Ramayana and Mahabharata."[81]

द्विसंधान-काव्य में कथानकीय स्तर पर हर्ष, शोक, क्रोध, भय, घृणा आदि भावों का अनुपम संयोजन हुआ है। आचार्य राजेन्द्र मुनि के शब्दों में—

81. Mohite, Dr. A.S., 'Poetic Epics in Indian Literature', 2nd edition, Sadbhavna Publishers, Allahabad, 1961, p. 120-121.

'शब्दक्रीड़ा के बावजूद रसात्मक वैशिष्ट्य विद्यमान है। महत्कार्य और महदुद्देश्य का निर्वहन भी हुआ है। विवाह, कुमार क्रीड़ा, यौवराज्यावस्था, पारिवारिक कलह, दासियों की वाचालता का सुन्दर चित्रण हुआ है। यथा—

'विसा रिभिः स्नानकषायभूषितैर्विभीषितेव प्रियगात्रमङ्गना।
शुचौ समालिङ्गति यत्र साखे ह्रदेतरन्ती कलहंससंकुले।।'[82]

प्रथम अर्थ : ग्रीष्म ऋतुओं में जहाँ पर सुन्दर हंसों से पूर्ण सरयू नदी के घाट हैं, वही पर तैरती हुई युवती स्नान के समय लगाए लेप आदि से (रंगी हुई) मछलियों से डरकर अपने पति के शरीर से लिपट जाती है।

द्वितीय अर्थ : हस्तिनापुर में सुन्दर हंसों से परिव्याप्त और उनके कोलाहल से युक्त स्वच्छ तालाब में तैरती हुई अंगनाएं उनके शरीर से चिपट जाती हैं।[83]

प्रकृतिचित्रण एवं रसवर्णन

आलोच्य काव्य में कविवर धनंजय ने प्रकृति के रम्यरूप को प्रस्तुत किया है। प्राकृतिक रम्यता वर्णन के अन्तर्गत उन्होंने मानवीय भावनाओं का अनुपम उद्वेलन किया है। जैसे—

'भूजायते प्रदेशेऽस्मिन्सालतालीसमाकुले।
अभिख्यातियुता नित्यं शष्पच्छायोदकान्विता।।'[84]

साल (शाल) एवं ताल वृक्षों से परिव्याप्त भोज पत्रों के समान विस्तृत और समतल क्षेत्र में दूब की छाया और जल से पूर्ण शीतल

---

82. द्विसंधानम्, शिवदत्त शर्मा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, 1/12 1895 ई.
83. शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 89
84. द्विसंन्धानम्, शिवदत्त शर्मा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, 7/45

भूमि अत्यन्त रमणीय प्रतीत होती है। रसात्मकता के आधार पर आलोच्य काव्य में वीररस अंगीरस है, तथा अंग रूप में श्रृंगार रस है। इसी के साथ भयानक, रौद्र और वीभत्स रसों का निरूपण हुआ है।

हम यहाँ श्रृंगार रसभावना का एक उदाहरण पेश करते हैं–

'क्षुपविपिनलतान्तरेजनामा–मितिसुरतव्यवहारवृत्तिरासीत्।
ननु दयितपरस्परानिकार-व्यवहरणं भुवि जीवितव्यमाहुः।।'[85]

कवि कहते हैं–'छोटे-छोटे पौधों की सघन पंक्ति में और लताओं की ओट में क्रीड़ा करते हुए' लोगों की सुरत क्रिया का आचरण प्रकट हो रहा था। सत्य है कि प्रेमी-प्रेमिकाओं के परस्पर निश्छल व्यवहार से ही संसार में जीवन प्रवाह चलता है।

आलंकारिकता तथा पाण्डित्य

सम्पूर्ण काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक आदि अलंकारों का व्यापक प्रयोग हुआ है। अन्तिम सर्ग में कवि ने यमक अलंकार का प्रयोग किया है। सभी पद्यों में श्लेष उपलब्ध होता है।

जहाँ तक पाण्डित्य का सवाल है, आलोच्य काव्य में कवि का पाण्डित्य विशेष तौर पर सम्प्रेषित हुआ है। चाहे व्याकरण हो या काव्यशास्त्र, राजनीति हो या सामुद्रिक शास्त्र, हर विषय की चर्चा इस काव्य में उपलब्ध होती है। एक उदाहरण देखिए–

'पदप्रयोगे निपुणं सन्धौ विसर्गे च कृतावधानम्।
सर्वेषु शास्त्रेषु जितश्रमं तच्चापेपि न व्याकरणं मुमोच।।'[86]

'शब्द और धातुओं के प्रयोग में निपुण, षत्वकरण हो या णत्वकरण,' सन्धि तथा विसर्ग का प्रयोग करने में न चूकने वाला तथा समस्त शास्त्रों

---

85. द्विसन्धानम्, शिवदत्त शर्मा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, 15/18। अधिक जानकारी के लिए देखिए, त्रिपाठी, डॉ. यज्ञदत्त, द्विसंधानम् काव्यः स्वरूप व समीक्षा, 1982 नवभारत पब्लिशर्स, नई दिल्ली.

86. देखिए, द्विसन्धानम्, शिवदत्त शर्मा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, 3/36

के परिश्रमपूर्वक अध्येता वैयाकरण भी व्याकरण के अध्ययन के समान चापविद्या को अचूक बना देते हैं।

अस्तु, 'राघव-पाण्डवीय महाकाव्य,' काव्य सौष्ठव के समस्त गुणों में अपना एक वैशिष्ट्य रखता है तथा जैन संस्कृत कृष्णकाव्य परम्परा में एक प्रतिनिधि साहित्यकृति है।

(छ) हरिवंशपुराण (आचार्य जिनसेन)

कृष्णपरक संस्कृत जैन काव्यसाहित्य में आचार्य जिनसेन कृत 'हरिवंशपुराण' को एक विशिष्ट साहित्यकृति के रूप में माना जाता है। यह एक वृहत्काय काव्यग्रन्थ है, जिसमें कुल सड़सठ (66) सर्ग हैं, तथा कुल श्लोकों की संख्या बाहर हजार हैं। इस ग्रन्थ का मुख्य परिचय तीर्थंकर अरिष्टनेमि का वंश परिचय है। हरिवंश ही उनका वंश है और इस काव्य में यादवकुल का वर्णन किया गया है। उन्नीसवें सर्ग से तिरसठवें सर्ग तक यादवकुल का विस्तृत वर्णन हैं। बत्तीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण के अग्रज बलराज या बलदेव का वर्णन है। पैंतीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण का जन्म प्रसंग वर्णित है। यहाँ से आगे अन्तिम सर्ग तक श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कालियमर्दन, कंसवध, उग्रसेन की मुक्ति, सत्यभामा और कृष्ण का विवाह, दक्षिणभारत विजय, दाक्षिणात्य में श्रीकृष्ण का गमन, श्रीकृष्ण का देहान्त, बलदेव का विलाप एवं उनकी जिनदीक्षा आदि कृष्णपरक जीवन की प्रासंगिक अवतारणा, हरिवंशपुराण में मिलती है।

हरिवंशपुराणकार आचार्य जिनसेन

दिगम्बर जैन आचार्य जिनसेन, हरिवंशपुराण के रचयिता थे। आचार्य जिनसेन पुन्नाट (प्राचीन कर्नाटक) के मुनिसम्प्रदाय के आचार्य थे। ये आचार्य कीर्तिषेण के पट्टशिष्य थे।

जहाँ तक ग्रन्थ रचना के समयकाल की बात है तो विद्वानों के अनुसार यह नौवीं शताब्दी विक्रमाब्द का ग्रन्थ माना जाता है। 783 ई.

में यह पूर्ण हुआ।[87] ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख है कि ग्रन्थ का शुभारम्भ वर्धमानपुर में नन्दराजा द्वारा निर्मित तीर्थंकर पार्श्वनाथ के भव्य मन्दिर में किया गया। परन्तु यहाँ रचना पूर्ण न हो सकी। दोस्तटिका नगरी में वहाँ की प्रजा द्वारा निर्मित तीर्थंकर शान्तिनाथ के मन्दिर में हरिवंशपुराण की रचना समाप्त हुई।[88]

काव्यसौष्ठव तथा सामाजिक राजनैतिक वैशिष्ट्य वर्णन

हरिवंशपुराण में इतिहास, राजनीति, धर्मनीति, आदि तमाम विषयों पर प्रकार डाला गया है। सृष्टिवर्णन को चार सर्गों में बाँटा गया हैं। तिरसठ शलाका पुरुष तथा राजागण व विद्याधरों का चरित्र वर्णन आचार्य जिनसेन ने सुन्दर रूप में किया है।

हरिवंशपुराण पर टिप्पणी करते हुए डॉ. उपाध्याय कहते हैं—

'हरिवंशपुराण' की भाषा भावपूर्ण, प्रौढ़ एवं उदात्त है। अलंकार की छटा यहाँ वहाँ फैली हुई हैं। विविध छन्दों का सुन्दर प्रयोग कवि ने किया है तथा अपने प्रातिभ शक्ति का सम्पूर्ण प्रयोग किया है। महाकाव्योचित सभी गुण इसमें विद्यमान हैं और प्रायः सभी रसों का वर्णन इसमें किया गया है। जरासंध और श्रीकृष्ण का युद्धवर्णन वीररस का प्रभावी समावेश तैयार करता है। नेमिनाथ का वैराग्य तथा श्रीकृष्ण के देहान्त पर बलराम का विलाप करुण रस को उभारता है।[89]

ग्रन्थ की भाषा भावात्मकता से परिपूर्ण है। कला और भाव के अन्तर्गत हरिवंशपुराण में संगीत कला की छटा (वसुदेव जहाँ कलाकार हैं) को देखने की बात कही गई है। कई दूसरी प्रख्यात कृतियों के साथ

---

87. देखिए Bhanushree, Dr. R.M., Jaina and Buddhist Literature : Selected Essays, JBDRS, Vol V, 1982, p. 129.
88. सर्ग 66, श्लोक 42, अधिक जानकारी के लिए देखिए शुक्ला, डॉ. सुनीति कुमारी, हरिवंशपुराण में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज, अरिहंत प्रकाशन.
89. उपाध्याय, डॉ. आलोक शंकर, जैन काव्य का सांस्कृतिक संदर्भ, सत्साहित्य प्रकाशन मण्डल, आगरा, 1989, पृष्ठ 63-64

हरिवंशपुराण काव्य अंशतः साम्य रखता है। एक तरफ जहाँ लोकविभाग तथा शलाकापुरुषों का वर्णन 'तिलोयपण्णत्ति' से मेल खाता है वहाँ द्वादशांग का वर्णन 'राजवार्तिक' से साम्य रखता है।

आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण की रचना करते हुए अपने समकालीन राजन्यवर्गों, शासकों, राजनैतिक परिस्थितियों आदि का उल्लेख किया है। प्रख्यात द्रविड़ इतिहासकार डॉ. सच्चिदानन्द मूर्ति हरिवंशपुराण का हवाला देते हुए लिखते हैं—

"Historically speaking, the Harivamsa Purana as a great piece of poetic endeavour is also a treasure trove of historians and laymen alike. Jinasena portrays the political scenario thereby locating specific areas and their rulers respectively. Jinasena mentions the names of famous rulers like Indrayudha on the north, Sri Ballabha, the son of Krishna on the south. Vatsaraja, the monarch of Avanti on the East and finally, the valiant warrior Jayavaraha of Saurashtra ruled the West."[90]

न सिर्फ राजनैतिक, बल्कि राजवंशों का सम्यकरूपेण उल्लेख इस काव्य के रचयिता ने अपनी रचना में सम्प्रेषित किया है। वर्धमान महावीर से लेकर गुप्तवंश तथा कल्कि के समयकाल तक मध्यदेश (Central Provinces) के शासक रहे सभी राजवंशों का पारम्परिक उल्लेख जिनसेन ने किया है। इसके अलावे अवन्ती के राज्यासन पर आसीन होने वाले राजवंश और रासभवंश के प्रसिद्ध राजा विक्रमादिव्य का भी क्रम उन्होंने दिया है।

---

90. Murthy, Dr. V.A. Satchidanand, 'The Dravidian Historicity : A Jaina Purview' Article published in the Felicitation Volume of Prof. Dr. Nageshwara Reddy. Institute of Dravidian Studies, p. 77-78

संन्यासी परम्परा व गुरुपरम्परा वर्णन

'हरिवंशपुराण' के रचयिता दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने अपनी रचना के द्वारा संतजीवन एवं गुर्वावली परम्परा विवरण के संरक्षण का एक सुपुष्ट दायित्व सम्हाला है। संतजीवन पर जो आचार संहितापरक सामाजिक व सांस्कृतिक तथा साधनात्मक दृष्टिकोण से सम्प्रदायपरक शोधकार्य किया जाता है (Hagiography and Allied Fields) उस दिशा में जिनसेन का हरिवंशपुराण कई तथ्य सामग्री जुटाकर विद्वानों के लिए एक दिग्दर्शिका प्रस्तुत करता है। जिनसेन ने अपने से पूर्ववर्ती जिन विद्वानों का उल्लेख किया है उनमें प्रमुख हैं—समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि, वज्रसूरि, महासेन, पद्मपुराणकार रविषेण, वरांगचरितकार जटासिंहनन्दि, कवि कुमारसेन तथा वीरसेन। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियों व कृतियों का परिचय 'हरिवंशपुराण' में दिया है।[91] यहाँ एक तथ्य देना आवश्यक है। आचार्य जिनसेन दिगम्बर धारा से सम्पृक्त होने के बावजूद, हरिवंशपुराण के अन्तिम सर्ग में लेखक ने तीर्थंकर वर्धमान महावीर के विवाह प्रसंग का उल्लेख किया है। यह मान्यता श्वेताम्बर परम्परानुसारी है। यह बात दिगम्बर सम्प्रदाय को मान्य नहीं है। जिनसेन ने लिखा है–'यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीर विवाह मंगलम्'। यह वक्तव्य अपने आप में अति विशिष्ट मानना चाहिए।[92]

इन सबके द्वारा हम जिनसेन को एक अति प्रतिभावान एवं अध्यवसायी कवि व साहित्य साधक के रूप में देख पाते हैं।

---

91. चौधरी, डॉ. गुलाबचन्द, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-6, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, 1973, पृष्ठ 48
92. हरिवंशपुराण, सर्ग 66/8, तथा अधिक जानकारी के लिए देखिए शोध निबन्ध- Jinasena : The Digambara Poet with a Swetambara niche, Orient View Publishing Agency, 1976, by Dr. Anantadas Tripathi, Mumbai, p. 161-281 (Discussions on the Jaina Sectarian Clan).

(ज) नेमिदूत (विक्रम कवि)

नेमिदूत एक्र लघुकाव्य है, जिसके रचयिता विक्रम कवि हैं। नेमिदूत शीर्षक से स्पष्ट है, इस काव्य का उपजीव्य विषय नेमिनाथ का चरित्रवर्णन है। रचनाकार विक्रम कौन है इस पर डॉ. कैथरीन बेल टिप्पणी करती है—

"We find an epigraph which is located in the famous Chintamani Parshwanath Temple situated in Khambhat. The epigraph is dated about 1352 Vikrama Era. One, while transcribing the epigraph sees a specific description of Shrawakas of Jaina householders of high clan, who arrived on Sambhat (Khambhat?) from Malwa, Sapadalaksha and Chittor (Chitrakut). They were named in relation with Sangan, Jayata and Prahladan, who were prosperous Jaina Shravakas of that era."[93]

डॉ. बेल के द्वारा निरूपित इस तथ्य में सांगण, जयता और प्रह्लाद जैसे धनी श्रावकों का नाम आता है, जिन्होंने उक्त मन्दिर में निरंतर पूजा होते रहने के लिए व्यापार पर कुछ लागत (लाग) बांध दी थी। इनमें सांगण हुंकारवंश (हूम्बड) के और जयता सिंहपुर वंश के थे। इस बात की संभावना है कि इनमें से पहले श्रावक सांगण के ही पुत्र विक्रम रहे हों।

डॉ. अवस्थी सांगण आदि को दिगम्बर सम्प्रदायभुक्त मानते हैं। इस पर उनका मानना है—

"The names of Sahashrakirti and Yashahkirti are mentioned on the fourth stanza, who were celebrated

---

93. Bell, Dr. Catherine, Ballads of Stone : Epigraphical Findings of Western India, Navbharat Publishers, 3rd Ed. 1970, p. 120-121
94. Avasthi, Dr. Umashankar, 'On the Sectarian Clan of Gujrati Traders in Early middle Ages.' p. 29

Digambara Acharyas of that period. Their name has also been found in the twenty seventh stanza (emphasising Yashahkriti) and it can be rightly deduced that the Shravakas could well be related with the Digambara clan."[94]

इसके अलावे यह भी माना जा सकता है कि हूम्बड और नरसिंहपुरा जातियों के श्रावक दिगम्बर आम्नाय के अनुयायी हैं। नाथूराम प्रेमी भी इसी मत पर आलोकपात करते हैं। विद्वानों का एक अलग जत्था या समुदाय है जिन्होंने कवि विक्रम का दूसरा परिचय प्रामाणिक माना है। इस दल के प्रतिनिधि चिन्तक मोहनलाल दलीचंद देसाई हैं। देसाईजी ने अपने 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' ग्रन्थ में सांगण सुत विक्रम को गुर्जर महाकवि ऋषभदास का भाई माना है। विद्वानों के अनुसार इनका समयकाल सत्रहवीं सदी निर्धारित किया जाता है। नाथूराम प्रेमी इस मत की आलोचना करते हैं।

कवि विक्रम को लेकर एक और मान्यता है। मुनि विद्याविजय द्वारा निष्पण्ण इस मान्यता के अनुसार विक्रम कर्णावती के मंत्री सांगण के पुत्र थे।[95]

महोपाध्याय विनयसागर बड़ी गंभीरता के साथ इन तीनों अलग-अलग मान्यताओं की समीक्षा करते हैं। उनके अनुसार—

"खरतरगच्छालंकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावलि (चौदहवीं शती के उंत्तरार्ध की रचना) के अनुसार श्री जिनपतिसूरिजी के शिष्य श्रीजिनेश्वर सूरि ने वि. स. 1285 से वि. स. 1330 तक लगभग 12, 15 शिष्य कीर्तिनन्दी में दीक्षित किए थे, जिनमें यशःकीर्ति का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त एक और बात यह भी है कि इसी गुर्वावलि में सं. 1226 में श्री जिनेश्वर सूरि की अध्यक्षता में एक यात्रासंघ निकला था जो क्रमशः यात्रा करते-करते खंभात में पहुँचा। वहाँ मन्दिर में फूलमाला

---

95. प्रेमी, नाथूराम, जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ 361

की बोलियाँ लगी थीं। उनमें सांगणसुत ने द्रुमों में चमरधारक पद धारण किया था।"

जिस हूम्बड जाति को देखकर कवि को दिगम्बर बताया गया है, वह हूम्बड जाति श्वेताम्बरों में भी होती है और आज मालव देशस्थ प्रतापगढ़ में लगभग 75 घर हूम्बड जाति के हैं। ये सबके सब श्वेतांबर हैं। पूर्व में भी बारहवीं सदी में युग प्रधान दादा पद धारक श्री जिनदत्तसूरि भी हूबंड जाति के ही थे।[96]

नेमिदूत काव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कृति सांप्रदायिक नहीं है। यहाँ श्वेताम्बर या दिगम्बर आम्नाय की कोई बात नहीं मिलती। जब तक कवि के गण-गच्छ का पत्ता न लगे, तब तक कवि के आम्नाय का यथार्थ निर्णय नहीं किया जा सकता। केवल श्वेताम्बर वृत्ति के आधार पर कवि को श्वेताम्बर मानना ठीक नहीं।"[97]

कथानक का स्वरूप

नेमिकुमार जिस समय संसार से वैराग्यवान होकर विरक्तिपूर्वक तपस्या के लिए चले गए तब विरह से पीड़ित राजीमती ने एक वृद्ध ब्राह्मण को नेमि की तपोभूमि में उनके कुशलक्षेम का समाचार जानने के लिए भेजा। तदनन्तर उन्होंने अपनी पिता की आज्ञा से अपने किसी विश्वस्त सखी के साथ स्वयं अनुनय विनय करती हुई विरहदग्ध हृदय में भावनात्मक प्रलाप व्यक्त करने लगी। पति के कठोर तपश्चरण का प्रभाव भी उस पर पड़ा और राजीमती तपस्विनी बनकर तपस्या करने लगी।

कविवर विक्रम ने द्वारिका नगरी के सौन्दर्य तथा वैभव को विभिन्न तरीके से चित्रित किया है। राजीमती भरसक प्रयास करती रही कि किसी तरह नेमिकुमार को संसाराभिमुखी बनाया जाए। पर इन सबमें उसे कोई सफलता नहीं मिली।[97]

---

96. विनयसागर, महोपाध्याय (सम्पादित) नेमिदूत, प्रस्तावना।
97. शास्त्री, डॉ. नेमिचन्द्र, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, वाराणसी, 1971, पृष्ठ 479.

कवि ने इस लघुकाव्य में रैवतक पर्वत से द्वारिका के मार्ग तक पड़ने वाले अनेक प्राकृतिक दृश्यों का सजीव वर्णन किया है। डॉ. अर्हत प्रसाद जैन के अनुसार—

'The descriptions include the river Swarnarekha and its banks, Vamanapuri, another celebrated river named Bhadra and a city named Paura has been described by the poet.'[98]

इसके बाद कवि गंधमादन वेणुल पर्वत से द्वारका पहुँचने का प्रसंग लाता है। नेमिकुमार राजीमती का अनुरोध नहीं स्वीकारते। तब सखी, राजीमती की विरहावस्था का करुण चित्र प्रस्तुत करते हुए नेमिकुमार को लौटाने का पूरा प्रयास करती है। राजीमती की विरहदशा में होती हुई तड़प और छटपटाहट से नेमिनाथ करुणार्द्र हो उठते हैं। वे दयार्द्रभाव से राजीमती को धर्मोपदेश देते हैं। अंत में राजीमती भी साध्वी बन जाती है। विद्वानों का मानना है कि चूँकि काव्य में पहले वृद्ध ब्राह्मण को दूतरूप में प्रेषित किया गया, इसी बात को ध्यान में रखते हुए कृति का नाम नेमिदूत रखा गया है।

नेमिदूत : काव्य-समीक्षा

कवि का लक्ष्य आलोच्य काव्य में अत्यन्त मार्मिक तथा संवेदनशील है। कवि ने सखी द्वारा राजीमती की विरह वेदना को चित्रित किया है। साथ ही नायिका के शील और लज्जा का भी उन्होंने असामान्य संरक्षण किया है। यद्यपि नायिका का विरह वर्णन भावात्मक तौर पर काव्य की आधारभूत शक्ति है और केन्द्रीयता के परिपार्श्व में काव्य लेखन व निर्माण की प्रक्रिया आवर्तित होती है, फिर भी कवि ने

---

98. Jain, Dr. Arhat Prasad, Describing Regionalism : Medieval India as depicted through Jain Poetry article read in the XXIst Oriental Conference, Coimbatore, 1977

राजीमती के द्वारा अपने आराध्य के समक्ष मर्यादा का उल्लंघन नहीं करवाया है। विद्वानों के अनुसार नेमिदूत काव्य में विप्रलंभ श्रृंगार और शान्तरस का असाधारण संगम हुआ है। इस काव्य का आरम्भ राजीमती क विरह से होता है और शान्त रस से अभिषिक्त होकर निर्वाण की पराशान्ति में लय हो जाता है। इसीलिए यह काव्य विरहपीड़ा की ज्वाला से पीड़ित होकर भी आध्यात्मिक सुख व पराशान्ति के आलोक से पवित्र और उज्ज्वल है। अतः यह विरह-सुखान्त है।

राजीमती के भाग्य में प्रियमिलन लिखा ही नहीं है। विक्रम ने राजीमती की करुणदशा तथा विरहावस्था का चित्रण 80 से 121 संख्यक पद्यों में किया है। इन बत्तीस पद्यों में भावात्मक काव्यचिन्तन का अति सरस लेखन प्रस्तुत किया गया है। जैसे—

'अन्तर्भिन्ना मनसिजशरैर्मीलिताक्षं मुहूर्त
लब्ध्वा संज्ञामियमथ दृशा वीक्षमाणार्तिदीना।
शय्योत्संगे नवकिशलयस्त्रंस्तरे शर्म लेभे
साम्रन्हीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता।।'[99]

विप्रलंभ श्रृंगार की ऐसी सरस उक्तियों से नेमिदूत काव्य अत्यन्त विशिष्ट बन पड़ा है।

नेमिदूत काव्य कृत्रिमता से रहित है। प्रवहमान काव्यबोध तथा प्रसादगुण सम्पन्न भाषा इस काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। आचार्य देवेन्द्रमुनि शास्त्री के अनुसार— वैदिक साहित्य में जैसा स्थान राधा और श्रीकृष्ण का है, वैसा ही स्थान जैन साहित्य में राजीमती और अरिष्टनेमि का है। सर्वोपरि जो भाव चिरन्तन बनकर उभरती है, वह यह कि राजीमती 'देह' की (कामुकता तथा प्रवृत्ति की) नहीं, 'देही' की (आत्मा की) उपासना करना चाहती है। उसके चरित्र की महत्ता इसी में है, जहाँ राजीमती अरिष्टनेमि की साधना का मार्ग ग्रहण कर

99. नेमिदूत, पृष्ठ 99
100. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि, भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन पृष्ठ 94

तीर्थंकर अरिष्टनेमि से पहले ही मुक्त हो जाती है। इस प्रकार राजीमती का प्रेम वासनात्मक प्रेम नहीं है। इस विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि– 'जो न होते नेम राजीमती, तो क्या करते जैन के यति।'[100]

प्रासंगिक तौर पर हम एक श्लोक का उल्लेख कर सकते हैं, जहाँ गिरनार पर्वत पर रहनेवाली विरहिणी राजीमती, विरक्त नेमिनाथ को संसारोन्मुख बनाने के लिए सखी से अपनी विरह-व्यथा व्यक्त करती है। उस व्यथा का काव्यात्मक उद्गार इस प्रकार है–

'विरहानलतप्ता सीदति सुप्ता
रचितमलिनदलतल्यतले मरकतविमले
न सखीमभिनन्दति गुरुमभिवन्दति
निन्दति हिमकरनिकरंपरितापकरम्
करकलितकपोलं गलितनिचोलं
नयति सततरुदितेन निशामनिमेशदृशा
मनुते हृदि भारं मुक्ताहारं
दिवसनिशाकरदीनमुखी जीवितविमुखी'।।[101]

अस्तु, नेमिदूत काव्य विरह भावना को 'वासना' से 'साधना' तक विकसित करने का एक अविस्मरणीय प्रयास है।

(झ) त्रिशष्टिशलाकापुरुष चरित्र (हेमचन्द्र)

जैन कृष्णकाव्य परम्परा का यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो श्वेताम्बर धारा से सम्पृक्त है। इसके रचयिता जैन जगत तथा भारतीय साहित्य जगत में प्रख्यात आचार्य हेमचन्द्र हैं। उनकी प्रातिभ शक्ति तथा बहुमुखी विषयों में तलस्पर्शी पाण्डित्य के कारण तत्कालीन पण्डितसमाज उन्हें 'कलिकालसर्वज्ञ' उपाधि से विभूषित कर चुका था। वस्तुतः वे उच्चकोटि के काव्य-शिल्पी, तथा बहुविद्यानिष्णात व्यक्ति थे। इस प्रख्यात काव्यग्रन्थरूपी महाचरित में जैनों के कथानक,

---

101. नेमिदूत 6-88, जैन साहित्य नो इतिहास, द्वितीय खण्ड, प्रो. हीरालाल रसिकदास कापडिया, पृष्ठ 449

इतिहास, सिद्धान्त व तत्त्वज्ञान को हेमचन्द्र ने विशेष तौर पर समाविष्ट किया है। ग्रन्थ मूलतः दस पर्वों में विभक्त है तथा प्रत्येक पर्व में अनेक सर्ग हैं। ग्रन्थ की श्लोक संख्या लगभग छत्तीस हजार (36,000) है। तिरसठ जैन शलाकापुरुषों का चरित निम्नलिखित दस पर्वों में दिया गया है–

- **प्रथम में** ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती
- **द्वितीय पर्व** में अजितनाथ व समरचक्री
- **तृतीय पर्व** में संभवनाथ से लेकर शीतलनाथ तक आठ तीर्थंकरों का जीवन वृत्त
- **चतुर्थ पर्व** में श्रेयांसनाथ से लेकर धर्मनाथ तक पाँच तीर्थंकर, पाँच वासुदेव, पाँच प्रति-वासुदेव, पाँच बलदेव तथा दो चक्रवर्ती मघवा व सनत्कुमार–कुल बाइस महापुरुषों का वर्णन है।
- **पंचम पर्व** में तीर्थंकर शान्तिनाथ का चरित्र वर्णित है, जो एक ही भव में तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती दोनों होने से दो चरित्र गिने गए हैं।
- **षष्ठ पर्व** में कुन्थुनाथ से मुनिसुव्रत तक चार तीर्थंकर, चार चक्रवर्ती, दो वासुदेव, से बलदेव तथा दो प्रतिवासुदेव–कुल चौदह महापुरुषों का प्रेरक जीवन चरित वर्णित हुआ है।
- **सप्तम पव** में नमिनाथ, दशम चक्रवर्ती हरिषेण और एकादश चक्रवर्ती जय, आठवें बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, राम, लक्ष्मण तथा रावण के चरित मिलाकर छह महापुरुषों का वर्णन हैं।
- **अष्टम पर्व** में तीर्थंकर नेमिनाथ, नवम वासुदेव, कृष्ण, बलदेव, बलभद्र तथा प्रतिवासुदेव जरासंध को मिलाकर चार महापुरुषों का जीवन चरित वर्णित हैं।
- **नवम पर्व** में पार्श्वनाथ तीर्थंकर और ब्रह्मदत्त नामक द्वादश (तम) चक्रवर्ती के चरित वर्णित हैं।

- **दशम पर्व** में वर्धमान महावीर का जीवन वृत्त जो तेरह सर्गों में व्याप्त हैं, ग्रन्थकार की प्रशस्ति भी है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रशस्ति अत्यन्त उपयोगी है।

कस्तूरमलजी बाँठिया का मानना है कि 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र' की रचना हेमचन्द्र ने कुमारपाल के अनुरोध से की थी।[102]

प्रख्यात जर्मन विद्वान योहन गेअर्ग ब्यूलर (Johan Georg Buhler) ने अपने ग्रन्थ 'Ueber des Leben des Jaina Monches Hema Chandra' (Wien, 1889) में हेमचन्द्र का समयकाल निर्धारित करते हुए त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र के रचना का समयकाल विक्रम संवत् 1216 से विक्रम संवत् 1228 माना है।[103]

(ञ) लघु त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित

आचार्य हेमचन्द्र के 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित' के आधार पर ही उपाध्याय मेघविजय ने इस काव्य की रचना की। इस कृति में विशेष रूप से शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के जीवन चरित्र दिए गए हैं। तीर्थंकर जीवन-चरित्र के अलावे इस काव्य में रामायण, महाभारत, बलदेव, बासुदेव तथा प्रतिवासुदेवों का भी यथासंभव वर्णन है। इस कृति की कुल श्लोकसंख्या पाँच हजार हैं।

त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित तथा महापुराण पर आधारित कुछ अन्य रचनाएँ हैं, जिनका नामोल्लेख मात्र कर रहे हैं—

1. लघुमहापुराण-चन्द्रमुनि
2. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र-विमलसूरि
3. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित-वज्रसेन

---

102. बाँठिया, कस्तूरमल, हेमचन्द्राचार्य जीवन चरित्र, पृष्ठ 18

103. अंग्रेजी अनुवाद के लिए देखिए–The Life of Hema Chandra (Singhi Jain Series no. 11), Bombay, 1936.

(ट) महापुराण या उत्तरपुराण (जिनसेन एवं गुणभद्र)

महापुराण ग्रन्थ उत्तरपुराण के नाम से जाना जाता है। जैन संस्कृत कृष्ण साहित्य में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है। महापुराण दो भागों में रचित हैं, प्रथम भाग का नाम आदिपुराण तथा द्वितीय भाग का नाम उत्तरपुराण है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ 76 पर्वों में निर्मित हुआ है।

महापुराण के पूर्वार्ध की रचना आचार्य जिनसेन ने की तथा शेषांश उत्तरपुराण की रचना गुणभद्राचार्य द्वारा पूर्ण की गई है। आरम्भ के बयालीस पर्व (सर्ग) तथा तैतालीसवें पर्व के प्रारंभिक तीन पद्यों की रचना आचार्य जिनसेन ने की। उसी प्रकार उत्तरपुराण के इकहत्तर, बहत्तर व तिहत्तरवें पर्व में श्रीकृष्ण कथा का विवेचन है। आचार्य गुणभद्र, आचार्य जिनसेन की ही तरह एक विद्वान तथा सुकवि आचार्य थे।

विद्वानों के अनुसार महापुराण के उत्तरार्ध उत्तरपुराण की रचना का समापन विक्रम संवत् 910 अर्थात् 853 ई. के लगभग बताई जाती है।[104]

'हरिवंशपुराण तथा उत्तरपुराण, परवर्ती ग्रन्थकारों के लिए आधारभूत ग्रन्थ रहे हैं। दिगम्बर जैन विद्वानों ने इन्हीं दो ग्रन्थों के आधार पर श्रीकृष्ण जन्म सम्बन्धी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। ग्रन्थ के प्रथम अंश में आदिपुराण के अन्तर्गत प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का वर्णन है। शेष तेइस तीर्थंकरों तथा अन्य शलाका पुरुषों का जीवन-चरित्र उत्तरपुराण में विवेचित हुआ है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि इस काव्य में कृष्ण वर्णन हरिवंश पुराण की अपेक्षा संक्षिप्त हुआ है। परम्परागत कृष्णचरित्र के प्रमुख प्रसंगों का ही यहाँ विवेचन है।[105]

हरिवंश पुराणकार जिनसेन-महापुराणकार जिनसेन

महापुराणकार जिनसेन से हरिवंशपुराण के रचयिता जिनसेन भिन्न हैं। इस विषय पर डॉ. रेड्डी का विचार है—

---

104. प्रेमी, नाथूराम, जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ 140
105. शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ 101

"The poet Jinasena, being the writer of Harivamsapurana was an 'Acharya of the Punnata (Punnatak) sangha or conglomeration of monks. On the other hand the author of 'Mahapurana' also known as Jinasena related himself with Panchastupanvaya Digambara sect."[106]

डॉ. चन्द्रशेखर रेड्डी की इस उक्ति का समर्थन और जिनसेन नामक दो भिन्न संघीय आचार्यों के विषय में डॉ. आदिनाथ उपाध्ये और डॉ. हीरालाल जैन ने विस्तृत चर्चा की है। जहाँ तक इस अध्याय में आलोच्य 'महापुराण' का सवाल है, तो इसके रचयिता जिनसेन का कहना है कि यह (महापुराण) कृति, पुराण और महाकाव्य दोनों हैं। वास्तव में यह एक पौराणिक महाकाव्य है। 'महापुराण' शीर्षक की सार्थकता पर अपनी बात रखते हुए जिनसेन 'पुराण' शब्द के आत्यन्तिक अर्थ का स्पष्टीकरण करते हैं। जिनसेन का कहना है—

"जिसमें क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष और उनकी चेष्टाओं का वर्णन हो, वह पुराण है। इस प्रकार के पुराणों में लोक, देश, पुर, राज्य, तीर्थ, दान-तप, गति तथा फल इन अष्टबलों का वर्णन होता है।"[107]

'पुरातनं पुराणं' अर्थात् पुराण वही जो प्राचीन है। किसी एक महान पुरुष का जीवन जहाँ वर्णित है, वह पुराण कहलाता है और जहाँ तिरसठ शलाका पुरुषों का वर्णन है, वही महापुराण है। 'सत्वधर्मः पुराणार्थ' से आशय है, पुराण में धर्म कथा का प्ररूपण होना चाहिए।

(ठ) महापुराण (मल्लिषेणसूरि)

---

106. Reddy, Dr. C.S., On the Canonical Heritage of Digambara Sect and its Literature, Navbharat Publishing Company, 1936, p. 123-24

107. महापुराण, पर्व 1-21-25

विभिन्न विषयों के मर्मज्ञ पण्डित तथा उच्चकोटि के कवि मल्लिषेणसूरि ने महापुराण नामक एक काव्य की रचना की। 'महापुराण' में कुल 2000 श्लोक हैं। तिरसठ शलाकापुरुषों का वर्णन इस काव्य में संक्षिप्त रूप में किया गया है। रचनात्मक सुन्दरता तथा प्रसादगुणयुक्त इस काव्यकृति का अपरनाम त्रिषष्टि-महापुराण है।

रचयिता तथा रचनाकाल : सामान्य परिचय

महापुराण की रचना का समयकाल शक 969, तदनुसार विक्रम संवत् 1104 ज्येष्ठ सुदी पंचमी दिया गया है। अतः मल्लिषेण ग्यारहवीं सदी, विक्रमाब्द का उत्तरभाग तथा बारहवीं सदी के प्रारम्भिक समयकाल के हैं। ये अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान एवं कवि रहे हैं। कर्नाटक के दिगम्बर जैन आचार्यों में इनका नाम विशेष चर्चित रहा है।

गंगनरेश रायमल्ल और सेनापति चामुण्डराय के गुरु अजितसेन थे। अजितसेन के शिष्य थे कनकसेन, कनकसेन के शिष्य थे जिनसेन तथा जिनसेन के शिष्य मल्लिषेण थे। मल्लिषेण न सिर्फ एक बड़े विद्वान-आचार्य थे, बल्कि एक बड़े मठ के अधिपति भी थे। इनका मठ धारवाड़ जिले (कर्नाटक राज्य) के मुलगुंड में अवस्थित था। वही इस ग्रन्थ की रचना की गई। मल्लिषेण द्वारा रचित अन्य कृतियों के नाम हैं—नागकुमारकाव्य, भैरवपद्मावतीकल्प, सरस्वतीमंत्रकल्प, ज्वालिनीकल्प और कामचाण्डालीकल्प।[108] मल्लिषेण अपने समय के प्रख्यात मंत्रविज्ञानवेत्ता भी थे।

(3) पाण्डव-चरित (देवप्रभसूरि)

महाभारत प्रसिद्ध पाण्डवों के चरित्र पर इस कृति का कथानक आधारित है। इस कथानक में पाण्डवों का जीवन जैन परम्परा के

---

108. देखिए Sharma, Dr. Anantram, Digambara Saints of Karnataka, vol. 1. Vir Mandir Trust, p. 123 तथा नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ 388.

आलोक में रचित है। प्रसंगानुसार नेमिनाथ का चरित भी इसमें कवि ने सम्मिलित किया है। वीररस प्रधान इस काव्य में शृंगार, अद्भुत और रौद्र रसों के साथ शान्त रस का भी संचरण हुआ है। वर्ण्यविषयों के आधार पर सर्गों का नामकरण हुआ है।

'पाण्डव चरित' के रचनाकार इस कृति के कथानक का आधार दो ग्रन्थों से ग्रहण करते हैं। उन्होंने कहा है–

'षष्ठांगोपनिषत्त्रिषष्टि चरितानालोक्यकौतूहला-
देतत् कन्दलयांचकार चरितं पाण्डोः सुतानामहम्।'

श्लोक से स्पष्ट है कि षष्ठांगोपनिषद और त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित जैसी कृतियों के आधार पर पाण्डव-चरित की रचना हुई है।

प्रशस्ति पत्रों से यह पता चलता है कि पाण्डव चरित के रचनाकार मलधारीगच्छ के देवप्रभसूरि थे। देवानन्दसूरि के अनुरोध पर यह ग्रन्थ रचा गया था।[109]

आठ हजार श्लोक संख्यक इस रचना में अनुष्टुप् छन्द का मुख्यतः प्रयोग हुआ है। अन्य छन्दों में वसंततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी आदि छन्दों का भी प्रयोग कवि ने किया है। अनुप्रास, यमक, वीप्सा, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का उपयोग भी यथास्थान हुआ है। यह मूलतः एक धार्मिक काव्य है, जिसमें दानशीलता आदि का वर्णन करते हुए कवि ने सांसारिक अनित्यता का वर्णन किया है। इस कृति का रचनाकाल विक्रमाब्द 1270 माना जाता है।

(ढ) हरिवंश पुराण (भट्टारक सकलकीर्ति-ब्रह्मजिनदास)

जिनसेन के हरिवंशपुराण के कथानक पर आधारित इस कृति में 40 सर्ग हैं।[110] इस कृति में हरिवंश कुलोत्पन्न बाइसवें तीर्थंकर

109. पाण्डव-चरित प्रशस्ति, पद्य 8-9
110. देखिए, भारतीय धर्मोपासना में निरीश्वरवादी साहित्य-सर्जन, आचार्य पारसनाथ शास्त्री, शिव ओम पब्लिशर्स, ऋषिकेश, 1978, पृष्ठ 34

नेमिनाथ, श्रीकृष्ण तथा कौरव व पाण्डवों का वर्णन है। यह कृति भी दो रचयिताओं की फलश्रुति है। प्रारम्भ के चौदह सर्गों की रचना भट्टारक सकलकीर्ति ने की तथा बाकी सर्गों की रचना इन्हीं के शिष्य ब्रह्मजिनदास ने की।

विद्वानों में भट्टारक सकलकीर्ति के समयकाल को लेकर काफी भिन्नता रही है। डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल के अनुसार इनका जन्म विक्रम 1443 और निधन विक्रम संवत् 1499 में हुआ। डॉ. मोरित्स विन्टरनित्ज़ (Moritz Winternitz) ने अपने कई लेखों में जैन रचनाकारों का जिक्र किया है, जिनमें भट्टारक सकलकीर्ति का समय (निधन सम्बन्धी) उन्होंने विक्रम संवत् 1521 का दिया है, जो सही नहीं है।[111] डॉ. जोहरापुरकर का दिया हुआ समय भी (संवत् 1450) सही नहीं ठहरता।

भट्टारक सकलकीर्ति डूँगरपुर पट्ट के संस्थापक तथा बागड़ (सागवाड़ा) बड़साजन पट्ट के भी संस्थापक थे। इन्होंने लगभग चौंतीस ग्रन्थों की रचना की जिनमें अट्ठाइस भाषा में तथा छह राजस्थानी भाषा में रचित हैं।

(ण) पाण्डव-पुराण (भट्टारक वादिचन्द्र)

अठारह सर्गों में प्रस्तुत पौराणिक काव्य विभाजित है। भट्टारक वादिचन्द्र ने इस ग्रन्थ की रचना की। इस काव्य का रचनाकाल सं. 1654 है। इनके गुरु का नाम प्रभाचन्द्र था। भट्टारक वादिराज कई ग्रन्थों के रचनाकार हैं। उनकी कृतियों में पार्श्वपुराण, ज्ञान सूर्योदय नाटक, पवनदूत, श्रीपाल आख्यान, यशोधर चरित्र, सुलोचना चरित्र, होलिका चरित्र और अम्बिका कथा प्रमुख हैं। 'पाण्डव-पुराण' (भट्टारक

---

111. इस पर विशद जानकारी के लिए देखें, Flaubert, Andre, Winternitz: A Scholar's Trail, Beacon Publishers, 1978, p. 21-35

वादिचन्द्र कृत) की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के तेरापंथी बड़ा मन्दिर में उपलब्ध है।

(त) पाण्डव-पुराण (शुभचन्द्र)

शुभचन्द्र रचित पाण्डव-पुराण की श्लोक संख्या छह हजार हैं। पाण्डवों की रोचक कथा का वर्णन यहाँ दिया गया है। इस ग्रन्थ को जैन महाभारत भी कहते हैं। पर्वों की रचना अनुष्टुप् छन्दों में हुई हैं तथा पर्वान्त में कवि ने छन्द परिवर्तन किया है।

काव्यात्मक पर्व का प्रारम्भ तीर्थंकर स्तुति से है। आचार्य परम्परा के अनुसार शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे तथा ज्ञानभूषण के प्रशिष्य थे। श्रीपाल वर्णी इनके शिष्य थे, जिनकी सहायता से शुभचन्द्र ने वाग्वर प्रांत के अन्तर्गत सागवाड़ा नगर में विक्रम संवत् 1608 भाद्रपद द्वितीया के दिन इस ग्रन्थ की रचना की है। पच्चीसवें पर्व में दिए गए कवि प्रशस्ति में इनकी गुरु परम्परा का तथा इनके द्वारा रचित पच्चीस ग्रन्थों की सूची प्राप्त होती है।[112]

शुभचन्द्र अपने समय के एक अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वान थे। इनके पाण्डित्य के चलते इन्हें 'त्रिविधविद्याधर' की उपाधि दी गई थी। त्रिविध के ज्ञाता का अर्थ है शब्दागम, युक्त्यागम और परमागम, जिनमें ये निष्णात थे। इसके अलावे इनके भाषिकी ज्ञान के कारण इन्हें षट्भाषा कवि चक्रवर्ती की उपाधि प्रदान की गई थी।

जिन प्रतिनिधि जैन कृष्ण काव्यों पर इस शोध के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है, इनके अतिरिक्त भी कुछ और रचनाएँ हैं, जिन्हें कालक्रमानुसार हमने सूचीबद्ध तालिका में पेश किया है। इनमें कुछ

---

112. विशेष जानकारी के लिए देखिए, Waylock, Stephen, 'The Pandavapurana of Shuvachandra', article published in the Journal of Indian Historical Chronicle, no. xxv, 1983

अरिष्टनेमि के चरित्र हैं, तो कुछ एक में प्रद्युम्न, पाण्डव और हरिवंश से सम्बन्धित चरित-काव्य हैं। हमारे मूल विवेच्य विषय की परिधि में ये विषयं उपयुक्त नहीं पड़ रहे थे, इसलिए सूचना मात्र यहाँ प्रदान किया जा रहा है।[113]

नाम	संवत्	रचनाकार
अरिष्टनेमि चरित	विक्रम संवत् 1223	रत्नप्रभसूरि
पाण्डव चरित	विक्रम संवत् 1257	देवप्रभसूरि
नेमिनाथ चरित	विक्रम संवत् 1285	उदयप्रभसूरि
प्रद्युम्न-चरित	विक्रम संवत् 1530	सोमकीर्ति
नेमिनाथ पुराण	विक्रम संवत् 1575	ब्रह्मनेमिदत्त
प्रद्युम्न-चरित	विक्रम संवत् 1645	रविसागर
पाण्डवपुराण	विक्रम संवत् 1657	श्रीभूषण
अरिष्टनेमि चरित	विक्रम संवत् 1668	विजयगणि
प्रद्युम्न चरित	विक्रम संवत् 1671	रतनचन्द
हरिवंशपुराण	विक्रम संवत् 1671	भट्टारक यशःकीर्ति
नेमिनाथ चरित	विक्रम संवत् 1975	कीर्तिराज
प्रद्युम्न चरित	सत्रहवीं सदी	मल्लिभूषण

इन सबके अतिरिक्त संस्कृत जैन कृष्णपरक साहित्य में नाटक जैसी विधा को लेकर कुछ दुर्लभ कृतियाँ मिलती हैं, जिनमें विशेष तौर पर हस्तिमल्ल रचित दो नाटक हैं। इनका नाम हैं– (1) विक्रान्त कौरव (2) सुभद्रा।

रचनाकार हस्तिमल्ल के बारे में जानकारी अधिक नहीं मिलती। कुछ एक छुटपुट सूचनाएँ मिलती हैं। एक बार एक मदोन्मत्त, उन्मत्त

113. शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण-चरित, पृष्ठ 82

हाथी को सम्पूर्ण वशीभूत कर लेने पर तत्कालीन पाण्ड्य राजा अत्यन्त प्रभावित होकर उन्हें 'हस्तिमल्ल' उपाधि प्रदान कर विभूषित किया था। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के मूर्धन्य साहित्यकारों में इनका नाम अग्रगण्य है। हस्तिमल्ल ही एक मात्र नाटककार हैं, जिनके द्वारा रचित नाटक आज भी उपलब्ध है। जन्म से ब्राह्मण थे, पर आचार्य समन्तभद्र कृत 'देवागम स्तोत्र' के असाधारण पाठ ने उन्हें इस हद तक प्रभावित किया कि उन्होंने जैन दीक्षा अंगीकार की।

इस प्रकार हम देख पाते हैं कि काव्य, चमत्कार, सौन्दर्य-सृष्टि, रसानुभूति आदि किसी भी दृष्टिकोण से जैन कृष्णपरक संस्कृत साहित्य कम महत्वपूर्ण नहीं है। सांस्कृतिक तथा नैतिक आदर्शों की स्थापना और उनके विकास में इस साहित्य का जो गरिमापूर्ण योगदान रहा है, वह श्लाघनीय है। ऐसे अनेक चरित्रों की अवतारणा जैन संस्कृत श्रीकृष्ण साहित्य में हुई हैं, जो न केवल प्रभावशाली व आदर्शमय हैं, बल्कि स्वस्थ समाज-रचना तथा व्यक्ति के विकासात्मक क़ल्याण के लिए हितकर एवं अनुकरणीय हैं। जीवन के सरस आमोद-प्रमोद एवं सुख वैभव के चित्रण के साथ-साथ जीवन-मूल्यों की प्रगाढ़ता भी इस साहित्य में देखने को मिलता है। जीवन को प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर उन्मुख करने का जो सफल तथा प्रभावपूर्ण प्रयोग किया गया है उससे मानव कल्याण के क्षेत्र में एक नवीन सूत्रपात हुआ है। यह संस्कृत वाङ्मय में एक नया आयाम रहा है।[114]

संस्कृत जैन कृष्ण काव्य की कृतियों में सर्वप्रमुख विशेषता यही रही कि यहाँ भोगवाद से ऊपर श्रमण परम्परा को प्रतिष्ठित किया गया है। इन सभी काव्यों की मूल संवेदना कर्मवाद का महत्त्व, पूर्वजन्म की व्याख्या, आध्यात्मिक चेतना का वैविध्यपूर्ण पर्याय, धार्मिक क्रिया तथा उसके फलित अर्थ की स्थापना रही है। संस्कृत साहित्य में जहाँ

114. शास्त्री, राजेन्द्र मुनि, जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ 106

प्रवृत्ति, शृंगार एवं भोगवाद को ही अन्यतम प्रमुख महत्व मिला है, वहाँ जैन संस्कृत साहित्य ने भोग के बाद वैराग्य और त्याग की भावना को विशिष्ट तौर पर सम्प्रेषित किया है। संस्कृत साहित्य में यह एक अनूठी वस्तु है। यहाँ ऐसे उदाहरण, काव्यात्मक संदर्भ भूरि-भूरि मिल जाएँगे कि परम वैभवशाली, महाराजा, मांगलिक, चक्रवर्ती, विद्याधर असीम सुखभोग में, जैविकता के कुम्भीपाक में फँसे हुए हैं। मदिरा से उन्मत्त, काम से पीड़ित ऐसे व्यक्ति कभी नितान्त तुच्छ किसी निमित्त के कारण इस संसार की क्षणभंगुरता को आत्मस्थ कर विरक्त हो जाते हैं। एक परिवर्तित मनोवृत्ति के चलते, वे सब कुछ त्यागकर साधना के लिए वन को प्रस्थान करते हैं। वही भोगी, विलासी नृपति अब नग्न मुनि का स्वरूप धारण कर आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु तपस्या में लीन हो जाता है। जैन चिन्तन, साधना तथा साहित्य में सम्प्रेषित व्यक्ति का यह सदर्थक परिवर्तन भारतीय संस्कृति की सुदूर्लभ थाती है। इसीलिए आत्मोत्थान की साधना तथा इस परिवर्तन की प्रेरणा, संस्कृत ही नहीं, समग्र विश्व-साहित्य का अमूल्य धरोहर है।

———◆———

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   - Vol - 1 (satakas 1- 2) Price : Rs. 150.00
   - Vol - 2 (satakas 3- 6) 150.00
   - Vol - 3 (satakas 7- 8) 150.00
   - Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism Price : Rs. 15.00
   ISBN : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 50.00
   ISBN : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8 Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN : 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	200.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	50.00

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskritir ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00
8.	Dr. Abhijit Bhattacharyya-Aatmajayi	Price : Rs.	30.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

		Rs. P.
जैन जर्नल त्रैमासिक पत्रिका (अंग्रेजी)	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
तित्थयर मासिक पत्रिका (हिन्दी)	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
श्रमण मासिक पत्रिका (बंगला)	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Vol XXXVIII No.01
25th April 2014

TITTHAYARA

Postal Reg. No. KOL.RMS / 70/2013-15
R.N.I. 30181/77

Change yourself and change your world

Shree Jin Chandra Suriji Maharaj
Founder of **SATYA SADHNA**

SITAL GROUP OF COMPANIES

Deals in :-

- ☐ Financial Services.
- ☐ Construction of Commercial & Residential Buildings.

BIKASH SINGH CHHAJER
"Centre Point" 21, Hemanta Basu Sarani
2nd Floor, Room No.-226, Kolkata-700001
Phone: (033) 22429265/22109228
Fax: (91-33) 22429265. Mobile: 9831022577
email: sitalgroupofcompanies@yahoo.co.in